हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया-पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

(सं॰ १९९९ वि॰-सन् १९४२ ई॰ से प्रकाशित)

वर्ष ५२ अङ्क ५

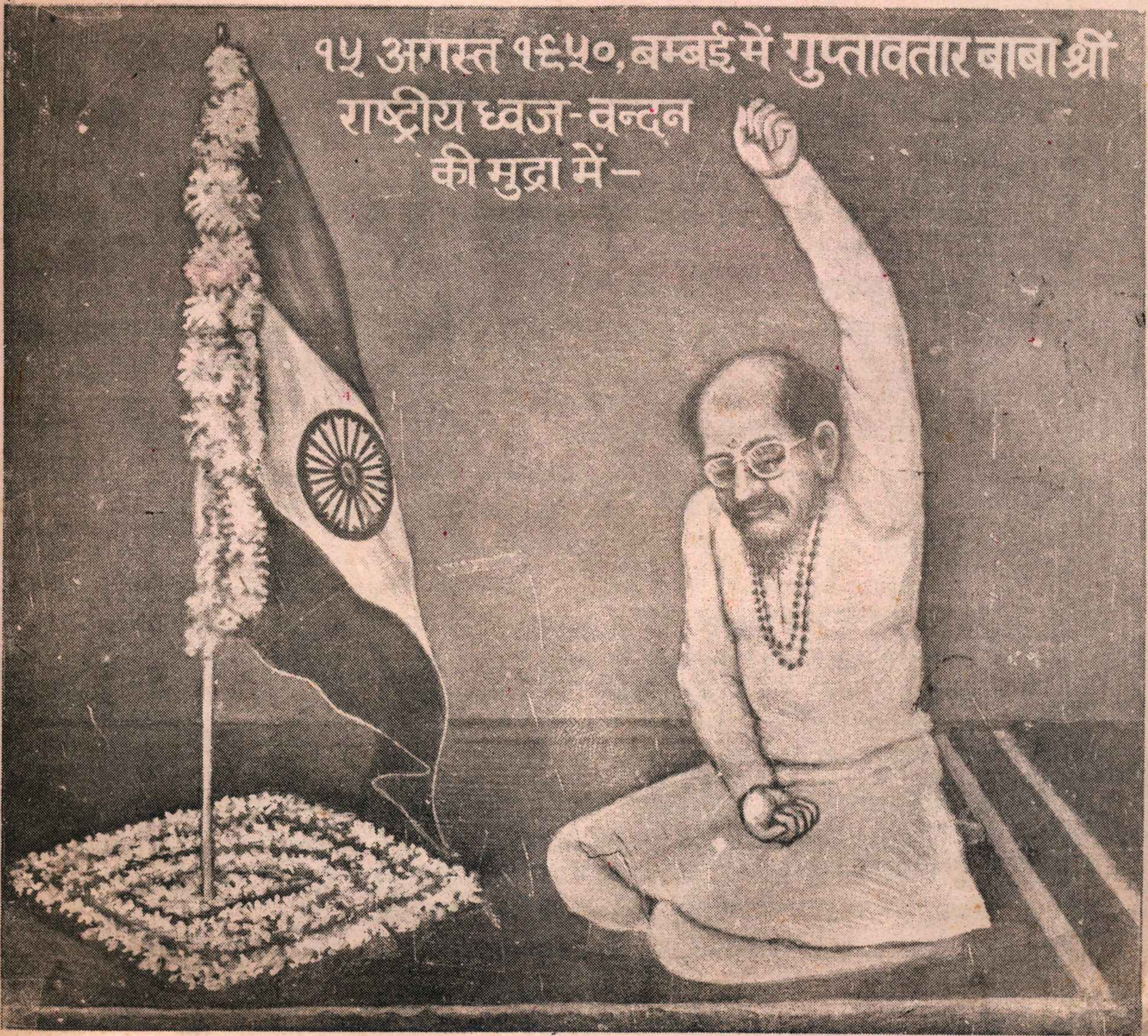

उपयोगी पुस्तकें

• गायत्री - कल्पतरु — १५ - ००

'गायत्री' का जैसा महत्व है, उसे देखते हुए उसके दार्शनिक तत्व की विशद व्याख्या का सरल हिन्दी में अभाव ही रहा है। प्रस्तुत पुस्तक में भगवती गायत्री का अत्यन्त सरल, सुबोध और वैज्ञानिक शैली में रहस्योद्घाटन किया है। इसके अतिरिक्त साधना - क्रम **सन्ध्योपासन** (प्रातः, मध्याह्न, सायं) **श्रीगायत्री - कवच - स्तोत्र, मन्त्रात्मक गायत्री - कवच, श्रीगायत्री - हृदय, श्रीगायत्री - अष्टोत्तर - सहस्र- नाम - स्तोत्र, श्रीगायत्री - पूजन - यन्त्र, श्रीगायत्री - काम्य- प्रयोग, अनुभूत प्रयोग** आदि बहु - उपयोगी विषय भी प्रकाशित हैं।

• श्रीनवरात्र - कल्पतरु — ३० - ००/ सजिल्द ४०-००

'नव - रात्र' महा - पर्व की महिमा को लोग अधिक - से- अधिक समझ सकें, इसी उद्देश्य से प्रस्तुत पुस्तक में 'नव - रात्र' के विविध पक्षों — **'नवरात्र' की ऐतिहासिकता, 'नवरात्र' की महिमा, 'नवरात्र - रहस्य'** एवं **'नवरात्र - पूजन'** पर प्रकाश डालनेवाले निबन्धों को प्रकाशित किया गया है।

• श्रीकाली - कल्पतरु — ५०- ००/ सजिल्द ६० - ००

प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा सरल हिन्दी में **महा - माया काली के रहस्यों का विस्तृत स्पष्टीकरण प्रस्तुत हुआ है। भगवती काली की महिमा, पूजा - पद्धति एवं भगवती काली के उपासक, तीर्थ - स्थानादि, दुर्लभ - साहित्य** पर भी प्रकाश डाला गया है।

• श्रीदुर्गा - कल्पतरु — १५ - ००

प्रस्तुत पुस्तक में भगवती दुर्गा के विलक्षण स्वरूपों का परिचय, श्रीदुर्गा - मन्त्र का परिचय, श्रीदुर्गा-दीप - दान प्रयोग, श्री दुर्गा - यन्त्र - तत्व, त्रि - शक्ति चामुण्डा का पूजन - विधान, श्रीदुर्गा - मन्त्र के काम्य - प्रयोग प्रकाशित हैं।

• भुवनेश्वरी - रहस्य (हिन्दी अर्थ सहित) — ४५ - ००

इस पुस्तक में भगवती भुवनेश्वरी की पूजा - विधि, मन्त्र - भेद, कवच, नाम - साहस्र स्तोत्रादि, मन्त्र - साधना आदि रहस्य - पूर्ण विषयों पर सरल हिन्दी - अर्थ - सहित विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

• श्री ललिता - सहस्र- नाम (सविधि एवं सव्याख्या) — ५० - ००

'श्रीललिता- सहस्रनाम' की महिमा आध्यात्मिक जगत् में प्रसिद्ध है। इसकी कितनी ही व्याख्याएँ संस्कृत, अंग्रेजी आदि में की गई हैं किन्तु हिन्दी में पहली बार साधकोपयोगी व्याख्या इस पुस्तक द्वारा प्रकाशित हुई है।

भगवती ललिता के एक हजार नामों की व्याख्या के साथ - साथ श्री ललिता सहस्र - नाम का सविधि मूल पाठ, प्रयोग- विधि, सामान्य प्रयोग, निष्काम - पाठ, सकाम - पाठ, पुत्र - प्राप्ति- प्रयोग, वशीकरण - प्रयोग, श्री - प्राप्ति- प्रयोग, आयुष्कर- प्रयोग, ज्वर - हर - प्रयोग, चतुर्थ्यन्त सहस्र - नामावली, माहाम्य - निदर्शन भी इस पुस्तक में प्रकाशित है। पृष्ठ सं० लगभग ३००। आकर्षक जिल्द।

• श्री ललिता त्रि - शती (सविधि एवं सव्याख्या) — २० - ००/ सजिल्द ३० - ००

भगवती ललिता के तीन सौ नामों की रचना स्वयं भगवती ललिता और श्रीकामेश्वर शिव द्वारा हुई। 'हयग्रीव' से ३०० नामों वाले इस स्तोत्र को 'अगस्त्य' मुनि ने प्राप्त किया। प्रस्तुत पुस्तक में भगवती ललिता के ३०० नामों का अर्थ, स्तोत्र का मूल - पाठ एवं प्रयोग - विधि प्रकाशित है। आकर्षक जिल्द।

मानद सम्पादक
श्री रमादत्त शुक्ल

सम्पादक
श्री ऋतशील शर्मा

पता
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयागराज—२११००६
(उ० प्र०)

दूर-भाष
६०६७८३

शुल्क भारत में
एक प्रति : रु० ६

वार्षिक शुल्क : रु० ६५
आजीवन शुल्क : रु० ६५०

शुल्क विदेश में
हवाई डाक समुद्री डाक

वार्षिक : रु० ६०० ४००
आजीवन : ६०००/४०००

शुल्क मनीआर्डर या ड्राफ्ट कौल-कल्पतरु चण्डी के नाम से चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद के पते पर भेजें।

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग
प्रयागराज २११००६

वर्ष ५२ | [अङ्क ५
श्रावण, 'व्यय' सम्वत् २०५० वि० अगस्त, १९९३

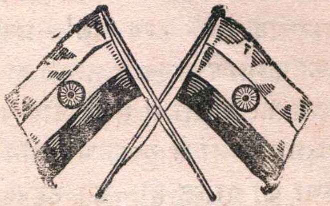

प्यारा भारत जग अनमोल।
भारत की जय जय बोल ।। प्यारा०
जन्म-दायिनी मातृ-भूमि है, वतन हमारा जय जय बोल।
जिन्दाबाद रहे दुनियाँ में, शिखर चढ़े यह देश अतोल ।।
हम सब मिलकर करें प्रतिज्ञा, जन्म-भूमि भारत जय बोल।
देश भला करने में जीवन - दान करेंगे भ्रम सब खोल ।।
प्यारा भारत जग अनमोल ।।

—गुप्तावतार बाबाश्री

इस अंक में

- महा-मन्त्र 'वन्दे मातरम्' ... १३०
- एक आध्यात्मिक रूपक—'क्या करूँ ?' ... १३१
- 'भूतनाथ' जी की महिमा (एक सत्य घटना) ... १३४
- साधना और 'कर्म'-रहस्य ... १३७
- साधन माला (अनोखा 'प्रयोग'-साहित्य) ... १४०-१५२
  श्रीस्वर्णाकर्षण भैरव स्तोत्र, श्रीदारुण सप्तक, श्रीराज राजेश्वर महा - काल-स्तोत्र, अथर्व-वेदोक्त वल्गा-सूक्त, श्रीत्रिशिरा देवी-विधान
- 'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र विज्ञान' मासिक पत्रिका की आलोचना ... १५२
- श्रीबटुक-भैरव-स्तोत्र (हिन्दी पद्यानुवाद) ... १५३
- शारदा माता मैहरवाली ! दरस देहु ... १५५
- माता पीताम्बरा का आवाहन और आगमन ... १५८
- जिज्ञासु के पत्र ... १६०

महा-मन्त्र 'वन्दे मातरम्'

• **'कुल-भूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल, प्रयाग**

'भारत' का जन - समाज सुदृढ़ एकता के सूत्र में आबद्ध होकर **व्यष्टि तथा समष्टि - रूप से**
भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास की चरम सीमा तक पहुँचने में सफल-मनोरथ हो और विश्व के अखिल
राष्ट्र-मण्डल में भारतीय गण - तन्त्र **'पथ' - प्रदर्शक के अपने पुरातन पद** को हस्त - गत कर अपने **ज्ञान-**
विज्ञान से मानव का कल्याण करने में तत्पर हो तथा **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** के अनुपम सिद्धान्त की सूत्र-
धार **भारतीय आत्मा की महत्ता** से सभी लोग परिचित हो सकें और **'सर्वे सुखिनः सन्तु'** जैसी परमोदार,
परम कल्याण-मयी भावनाओं से युक्त, भारतीय सिद्धान्तों की भू-मण्डल में व्याप्ति होकर, **स्थायी विश्व-**
शान्ति और व्यवस्था की प्राप्ति हो—इन उद्देश्यों की सिद्धि **महा - मन्त्र 'वन्दे मातरम्'** की सहायता से
ही सम्भव है।

सभी भारत-वासी, स्व-देश को **भारत - माता** के नाम से स्मरण करते हैं। सभी भारतीय,
जीवन-दान देनेवाली 'गाय' को **'गो-माता'** पद से बुलाकर उसे पूजते हैं। भूमि को उर्वरा बनाकर, अन्न
उपजानेवाली जीवनाधार जल - दात्री नदियों की **'गङ्गा मैया'**, **'यमुना मैया'** आदि सम्बोधनों से ही
'वन्दना' की जाती है; अधिक क्या, सङ्कट पड़ने पर **माँ** की ही एक-मात्र याद आती है। **'माँ'-तत्त्व** इस
प्रकार भारतीयों को जन्मतः हृदयङ्गम है।

तब **'वन्दे मातरम्'** की स्वागत-ध्वनि क्या भारतीयों को ऐक्य-सूत्र में खींच न लाएगी? **महा-**
मन्त्र 'वन्दे मातरम्' के आगे प्रान्तीय या सम्प्रदाय - वादिता की दीवालें क्षण भर को भी ठहर नहीं
सकतीं। यह अनुभव की बात है, **महा-मन्त्र** का नित्य स्मरण करने की बात है।

"एक भारत माँ की हम सन्तान हैं; उसी की वन्दना करके हम एक - दूसरे से मिलते - जुलते
हैं।"—यह भावना एक ऐसे **'बन्धुत्व' - भाव** का पोषण करने का सामर्थ्य रखती है, जिसकी परिणति
'एक राष्ट्र' और **'एक संस्कृति'** में होकर रहेगी।

'मातृ' - भाव की महिमा से विश्व का और विशेष कर 'भारत' का प्रत्येक प्राणी अभिभूत है,
केवल उसे जाग्रत् करने की देर है। जागरण की यह लहर फैलाने का श्रेय भारतीय गण-तन्त्र अनायास
प्राप्त कर सकता है। **विश्व-बन्धुत्व की भावना** की सृष्टि 'भारत' के सपूतों ने की थी और उसे क्रिया-
त्मक - रूप देने का महत् - कार्य भी भारतीय कर्म - योगियों के ही सु - योग्य कन्धों पर पड़े, यह सर्वथा
स्वाभाविक है।

अतएव आवश्यकता इस बात की है कि **महा-मन्त्र 'वन्दे मातरम्' की अन्तर्निहित शक्ति को**
हम पहचानें और भारतीय गण-तन्त्र में शीघ्राति-शीघ्र उसे उसके अनुरूप स्थान प्रदान करें। यह याद
रखना चाहिए कि **'वन्दे मातरम्'** को प्रधानता देने से, हममें **'एक माता की सन्तान होने की भावना'**
बढ़ेगी, जिससे **भ्रष्टाचार, पक्ष-पात, अत्याचार** जैसे दुर्गुणों का निर्मूलन ही होगा। इस प्रकार **'वन्दे**
मातरम्' और उससे स्फुरित भावनाएँ भारतीय गण - तन्त्र को राष्ट्रीय ही नहीं, **सार्वभौमिक उत्कर्ष**
प्रदान करने में कितनी समर्थ हैं, यह सर्वथा स्पष्ट है। अतएव यह भी निर्विवाद हो नहीं, अनिवार्य है
कि भारत के गण-तन्त्र राज्य में **'वन्दे मातरम्'** को सर्व-श्रेष्ठ गौरव प्राप्त हो।

एक आध्यात्मिक रूपक—

क्या करूँ ?

• पण्डित ज्वालाप्रसाद तिवारी 'लापता'

मैं—मनुआँ, तुझे याद होगा, **'कहाँ जाऊँ'** के प्रश्न पर बातचीत हुई थी और यह तय हुआ था कि कहीं जाना नहीं है। केवल यही तय करना है कि मुझे और तुझे क्या करना चाहिए ? आज आ और शान्ति-पूर्वक मुझे और तुझे क्या करना होगा, निर्णय कर लें। शान्ति-पूर्वक इस कारण कहना पड़ा कि तू बड़ा मनचला है। भय है कि कहीं कह बैठे कि जाने भी दो, फिर कभी देखा जाएगा। ऐसा करना उचित नहीं। **'गया वक्त फिर हाथ आता नहीं'** और किसी कवि ने भी कहा है कि—

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब्ब। पल में परलै होइगी, बहुरि करोगे कब्ब ? ॥

मनुआँ—ठीक है स्वामी, अभी सही।

मैं—तो शुरू करूँ और कहाँ से ?

मनुआँ—मैं यह नहीं बता सकता कि कहाँ से, परन्तु निवेदन है कि मेरी शक्ति को जानकर शुरू करना। कारण मैं अभी तक **'इच्छा' का दास** रहा। ऐसा न हो कि मैं आपको समझ भी न सकूँ। अतएव शुरू से चलना, वह भी समझाते हुए।

मैं—ठीक कहते हो। ध्यान देकर सुनना होगा। मैं तुझे समझा चुका हूँ कि ईश्वर का क्या रूप है ? फिर याद दिला दूँ कि **जड़ और चेतन जो कुछ देखते हो, सभी उसी का रूप है।** वह तो 'वायु' की भाँति है। जैसा किसी पदार्थ का रूप होगा, वैसा ही 'वायु' का हो जाता है। लोटे में लोटे का, कमरे में कमरे का। बाहर भी, भीतर भी—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो, रूपं - रूपं प्रति - रूपो बभूव।
एकस्तथा सर्व-भूतान्तरात्मा, रूपं-रूपं प्रति-रूपो बहिश्च ॥

मनुआँ—मुझे आपने बताया था कि **'निराकार'** भी है, **'साकार'** भी है, इनमें किसको मानूँ ?

मैं—**'निराकार'** तो है ही, तुलसीदास जी ने भी कहा है—

बिनु पग चलै, सुनै बिनु काना। बिनु कर करम, करै विधि नाना ॥

वह चलता भी है और नहीं भी चलता, एक ही काल में परस्पर - विरोधी भाव, गुण तथा क्रिया उसमें रह सकती है, परन्तु अपने भक्तों को प्रसन्न करने के लिए **'साकार'** होकर 'लीला' भी करता है। यही उसका चलना है। भगवद्-गीता में स्वयं भगवान् ने कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत ! अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥

मनुआँ—समझ गया। आज क्या करना चाहिए, इसी पर बात करना उचित होगा।

मैं—ठीक है। मुझे और तुझे उसे बुलाना होगा। कभी तो तू अपने ही में बुलाना (मन-ही-मन) अर्थात् **'लबों पर मुहर खामोशी, दिलों में याद करते हैं'** और कभी 'जोर-जोर' से पुकारेंगे, परन्तु प्रश्न उठता है किस 'नाम' से ? अतएव आज हम तुम, उसका 'नाम-करण'-संस्कार कर लें।

मनुआँ—'नाम-करण'-संस्कार करने की आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती क्योंकि किसी वस्तु के एक ही नाम से काम चल जाता है। उसके हजारों नाम रक्खे जा चुके हैं। सहस्र-नामों की पुस्तकें हैं। उन्हीं नामों से ही हम लोग भी पुकार लिया करेंगे।

मैं—ठीक है। मुझे भी मालूम है। मुझे और तुझे उससे 'प्रेम' करना है। 'प्रेम' के नाम ही से हम लोग बुलाएँगे, पुकारेंगे। 'प्रेम' का नाम सदा निराला ही हुआ करता है। जो रस, जो मधुरता 'प्रेम' के नाम में होती है, वह और नामों में नहीं। मैं तुझे उदाहरण देकर समझाए देता हूँ कि 'प्रेम' का नाम कैसा होता है। मैं अपनी ही मिसाल दिए देता हूँ। मेरा नाम है 'ज्वालाप्रसाद'। मेरे माता-पिता ने रक्खा था, परन्तु लोग मुझे पुकारते हैं भिन्न-भिन्न नामों से। कोई पण्डित जी, कोई तिवारी जी, कोई बाबू जी, कुछ साहब, कुछ ज्वालाप्रसाद तिवारी, कुछ ज्वालाप्रसाद, कुछ 'ज्वाला', कोई चाचा, ताऊ जी, दादा, मामा, नाना, बाबा इत्यादि। इतने नाम होते हुए भी उसने, जिसने मेरा नाम 'ज्वाला-प्रसाद' रक्खा था, अपने लिए एक निराला, निरर्थक नाम रक्खा था। वह नाम था 'मुन्नू', जिसके कोई अर्थ नहीं। 'मुन्नू' ही कहकर सदा मुझे बुलाते थे। मैं भी उस नाम को सुनकर प्रसन्न हो जाता था। मैं भी 'दादा' ही कहकर उत्तर देता था। पिता का भी नाम 'दादा' नहीं था, वह भी कुछ और ही था। 'मुन्नू' तथा 'दादा'—पहिला प्यार का, दूसरा बड़प्पन-सूचक। समझा। मनुआँ, वैसा ही नाम मैं और तू रख लें।

मनुआँ—आप ठीक कहते हैं। मैं समझ गया। 'प्रेम' के निरर्थक नाम में जितनी मधुरता होती है, उतनी किसी नाम में नहीं।

मैं—हाँ, 'प्रेम' अमृत - मय है। मीठा क्यों न होगा? अच्छा। सुना होगा बहुतों से कि अपने किसी मित्र सज्जन को **'किसन'** पुकारते हुए, जब कि नाम है **'कृष्णलाल।'** इसी भाँति हम तुम कृष्ण भगवान् को **'किसन'** कहा करें।

मनुआँ—ठीक है।

मैं—तो आज से दृढ़-प्रतिज्ञ हो जा कि **'किसन-किसन'** ही कह कर पुकारेंगे। 'राम'-मन्दिर में जाएँगे, उनको भी **'किसन'**, हनुमान जी को **'किसन'**, देवी जी को भी **'किसन'** ही पुकारेंगे, दूसरे नाम हम तुम भुला देवेंगे।

मनुआँ—ऐसा ही करूंगा, परन्तु इसमें भेद क्या है? मैं भली-भाँति समझ न पाया।

मैं—कभी कोई नाम, कभी कोई नाम—ऐसा करने से 'प्रेम' भाग जाता है।

मनुआँ—यदि मैं **'किसन'** के अतिरिक्त **'राम'** या अम्मा - पिता जी या **'भोले जी'** रख लूँ, तो कोई अन्तर पड़ेगा?

मैं—कुछ भी नहीं। मुझे कहो, तो ऐसा नाम बता दूँ कि तू हँसने लगेगा।

मनुआँ—स्वामी, हँसनेवाला नाम बताइए। थोड़ा आनन्द ले लें। अधिक देर से आप मुझे हल में जोते हुए हैं। थोड़ा समथा लेने दीजिए।

मैं—**'गड़बड़-झाला'** रख लो, परन्तु आज से, 'प्रेम' से, 'श्रद्धा' से यही चिल्लाते घूमो कि मेरा **'गड़बड़-झाला'** कहाँ गया?

मनुआँ—(हँसकर) स्वामी, उसको जिसको वेदों ने गाया—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्। तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्। विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥

मैं——हाँ, उसी जगदाधार, जगदीश्वर, सर्व-शक्तिमान सर्वेश्वर को ही बता रहा हूँ। तुझे पता है कि उसके सहस्र - नाम ही हैं, किन्तु उसके नाम भी असंख्य हैं। उन्हीं असंख्य नामों में से ही **'गड़बड़-झाला'** भी एक नाम है। किसी नाम से बुलाओगे, बोलेगा। इस बात को और समझ ले। जितने नाम तूने सुने होंगे या पढ़े होंगे, उन कोरे नामों से बुलाओगे, तो नहीं बोलेगा। चाहे दिन - रात **'हरि ओ३म्', राम - राम, सीता - राम, राधा - कृष्ण, अम्बे, मातेश्वरी, अल्लाह, गाड'** इत्यादि पुकारते रहो, चिल्लाते रहो क्योंकि—

यह सब नाम कोरे रक्खे हुए हैं। खूबी है कि सभी के लिए ये कोरे नाम ही मिलते हैं। प्रेमी इनको जब प्रेम से रँग देते हैं, तब इनमें वह झलक पैदा हो जाती है कि प्रेमी (भक्त) तो मस्त हो ही जाता है, वह जगदीश जगदाधार भी मस्त होकर प्रेमी को भजने लगता है। **अहं स्मरामि मद् - भक्तं, नयामि परमां गतिम्।** उसी के कहे हुए हैं——**खुद बखुद वह आएँगे, दर्दे जिगर होने तो दो !**

मनुआँ——स्वामी, समझ गया। नाम सभी उसी के हैं। सभी नामों से वह प्रसन्न होता है। भेद इतना ही है कि जिस नाम से बुला, 'प्रेम' से——'श्रद्धा' से बुला। सफलता अवश्य मिलेगी। मैं भली-भाँति समझ गया। बस, इतना ही मुझे और आपको करना चाहिए।

मैं——अभी तो नाम ही बतलाया है। इस नाम को लेना पड़ेगा किस भाँति ? मार्ग भी तो बतलाना पड़ेगा। मार्ग सीधा सरल है, यदि आँख खोलकर कोई चले। वरना बड़ा कठिन और विकराल है। ठोकरों, घने व्याघ्र-गजेन्द्र-सेवित वनों तथा काँटों, साँपों, विषैले कीड़ों से आच्छादित कष्टों से भरा हुआ है। **अरे मन ! समझ-समझ पग धरिए।**

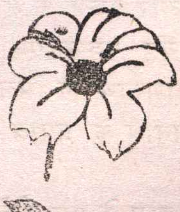

पाठकों के पत्र

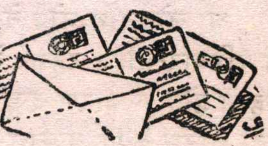

'...हमने आपके द्वारा सम्पादित **'कौल-कल्पतरु चण्डी'** पत्रिका पढ़ी। पढ़ने के बाद मुझको आत्मिक शान्ति और सन्तुष्टि प्राप्त हुई। पत्रिका में माँ की सुन्दर स्तुति और पराम्बा के गुण-गान से रोम-रोम आनन्द से स्फुरित होने लगता है।'

पण्डित राधेमोहन पाण्डेय, पो० बाक्स १८१, कानपुर (उ. प्र.)/३-६-८३

'...आकस्मिक, आपकी बहुउपयोगी 'चण्डी' मासिक पत्रिका को पाकर मुझे तो भगवत्-कृपा-प्राप्ति जैसा ही लगा। 'मन्त्र-तन्त्र विज्ञान' पत्रिका की आलोचनात्मक सम्पादकीय द्वारा सही मार्ग-दर्शन हेतु मेरी ही नहीं अपितु यहाँ की मेरी मित्र-मण्डली का धन्यवाद भी स्वीकार करें।'

पं० गौरीशङ्कर पाठक, बैङ्क ऑफ बड़ौदा, सीतामढ़ी (बिहार)

भागलपुर (बिहार) की एक सत्य घटना—

'भूतनाथ' जी की महिमा

पं० गोविन्द शास्त्री जी दुगवेकर

सम्राट् अकबर के समय की घटना है। उस समय से पहले मुर्शिदाबाद और मालदा का प्रान्त गौड़ देश के अन्तर्गत था और गौड़ देश के हिन्दू राजाओं के शासन में था। यह प्रसिद्ध ही है कि अकबर गुण-ग्राही सम्राट् था और हिन्दू - मुसलमान दोनों का, गुणों के अनुसार, समान रूप से आदर किया करता था। १६ वीं सदी के उत्तर-भाग में भागलपुर (बिहार) के दत्तवाटी नामक स्थान में श्री थाकोदत्त नामक एक बङ्गाली सज्जन रहा करते थे, जो अकबर की ओर से वहाँ के 'कानूनगो' नियुक्त हुए थे और उनको बड़ी जागीर मिली थी। भागलपुर, चौकी चम्पानगर आदि परगने उन्हीं की जागीर में थे। उस समय जिस प्रकार 'चीफ़ जज' को 'सदर अमीन' कहा करते थे, उसी प्रकार 'कानूनगो' का एक बड़ा पद माना जाता था। वह राजा का पर्याय-वाची शब्द था। वह बादशाह का कानूनी सलाहकार तो रहा ही करता था, किन्तु अपनी जागीर में अपने कानून चलाने का भी उसे अधिकार होता था। 'रूलिङ्ग प्रिन्स' का ही वह प्रकारान्तर कहा जा सकता था। यह अधिकार उसे बादशाह की ओर से सनद और पञ्जे के द्वारा मिला करता था।

थाकोदत्त ऐसे ही एक जागीरदार थे। उनकी कन्या शक्तिपुर (मुर्शिदाबाद - बङ्गाल) के एक जमींदार श्रीराम घोष से ब्याही थी। श्री थाकोदत्त के देहान्त के पश्चात् उनका पद और जागीर श्रीराम घोष को मिली। उनकी कार्य-परायणता और राज - सेवा से प्रसन्न होकर अकबर ने उन्हें वंश - परम्परा 'महाशय' अर्थात् राजा की उपाधि और पञ्जे के साथ सनद प्रदान की, जो उनके खानदान में अब तक सुरक्षित है। अकबर की आज्ञा का यह पञ्जा एक सुवर्ण के पत्र पर अङ्कित है। श्रीराम के देहान्त के उपरान्त उनका पद उनके प्रपौत्र प्राणनाथ को मिला, जिन्होंने अपना राज - भवन भागलपुर में गङ्गा जी के तट पर बनवाया है। प्राणनाथ के प्रपौत्र लोकनाथ हुए। उन्हीं के समय की यह घटना है।

श्री लोकनाथ घोष ने भागलपुर के पास के एक टीले पर एक मनोरम कोठी बनवाई थी और उसी में परिवार-सहित रहकर वे अपनी जागीर की देख-भाल किया करते थे। उनका सीधा सम्बन्ध बादशाह से होने के कारण बङ्गाल के नवाबों के उत्थान - पतन के झमेले में उनका कोई हाथ नहीं था और यही कारण है कि बङ्गाल-बिहार और उड़ीसा पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अधिकार स्थापित हो जाने पर कम्पनी ने उनकी स्वतन्त्रता में कोई हस्तक्षेप नहीं किया और शासक उनका अच्छा आदर-सम्मान किया करते थे।

कम्पनी के शासन-काल में नील की खेती करनेवाले अंग्रेजों का बड़ा बोल - बाला था। एक नीलवाले ने भी उसी टीले पर एक कोठी बनवा ली थी, जिससे लोकनाथ को विषाद होने लगा। एक दिन उनके घर की कोई बहू या बेटी स्नान कर घर लौट रही थी। उसे देखकर एक निलहे साहब के मुँह से निकल गया कि 'क्या बङ्गालियों में भी इतना सौन्दर्य हो सकता है!' जब यह बात लोकनाथ ने सुनी, तब इस स्थान में अपने को सुरक्षित न समझ कर कोठी त्याग कर अन्य स्थान में जा बसने का निश्चय कर लिया।

निलहों की कोठी के मुखिया से बातचीत हुई और यह तय पाया गया कि महाशय जी यह कोठी निलहों को दे दें और इसके बदले में भागलपुर के गङ्गा-तट की सौ बीघा जमीन वे ले लें, जो निलहों के अधिकार में है और जहाँ **'भगवती बेहुला'** का पवित्र स्थान है। यही चौकी **'चम्पानगर'** कहाता है। सम्भव है कि नाथ - सम्प्रदाय के **'नव - नाथ - चरित्र'** के अनुसार यही वह स्थान हो, जहाँ मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गौड़ - नरेश राजा गोपीचन्द्र (साध्वी मैनावती के कुमार) की राजधानी थी। इतिहास में इसका नाम **'चम्पावती नगरी'** पाया जाता है। जो हो, वहीं लोकनाथ घोष ने अपनी कोठी गङ्गा-तट पर बनवा ली और यहीं स-परिवार सुख के साथ वे रहने लगे।

लोकनाथ अपनी जमींदारी में एक बड़ा तालाब खुदवा रहे थे। एक दिन अकस्मात् उन्हें स्वप्न में **'भैरवनाथ'** के दर्शन हुए, जो कह रहे थे कि 'तुम तालाब खुदवा रहे हो, उसी भूमि में मैं दीर्घ-काल से पड़ा हुआ हूँ। वहाँ से मुझे अपने घर में ले जाओ। तुम्हारा कल्याण होगा।'

लोकनाथ आस्तिक तो थे ही, किन्तु अच्छे साधक और परम भगवद्-भक्त भी थे। उन्होंने बड़ी सावधानी से तालाब की मिट्टी हटवाना आरम्भ किया और स्वप्न के दृष्टान्तानुसार **'बटुक - भैरव'** की भव्य मूर्ति भू-गर्भ से प्रकट हो गई। यह मूर्ति काले पाषाण की ३ फुट ऊँची है और **'बटुक - भैरव'** के शास्त्रोक्त ध्यान के अनुसार निर्मित हुई है।

मूर्ति-भञ्जक मुसलमानों के अत्याचार जिस समय में चरम सीमा तक पहुँच गए थे, उस समय भक्त लोग अपने इष्ट-देव की मूर्ति को किसी सुरक्षित स्थान में ले जाते या सुभीता न होने पर किसी जलाशय में विसर्जन कर देते अथवा भू-गर्भ में छिपा देते थे। सम्भव है कि यह मूर्ति भी किसी साधक के द्वारा छिपा रक्खी गई हो और वह भूमि उपयुक्त भक्त के अधिकार में आ जाने पर उसके परिवार के कल्याण के लिए इस प्रकार प्रकट हो गई हो।

'भैरव'-मूर्ति के प्रकट हो जाने पर उसे उठा कर घर ले जाने का प्रयत्न किया जाने लगा। बैलगाड़ी पर चढ़ाकर उसे ले जाने का निश्चय हुआ, परन्तु कारीगर उसे उठाने के लिए जब उद्यत हुए, तब क्या देखते हैं कि मूर्ति की कमर में १०-१२ हाथ लम्बा एक मोटा साँप लिपटा है और पास आने-वालों को फण उठाकर फूत्कार करता हुआ भय दिखा रहा है! अतः मूर्ति के पास जाने का किसी को साहस नहीं होता था। तब लोकनाथ जी ने हृदय से प्रार्थना की कि 'प्रभो! मैं आपकी आज्ञा का ही तो पालन कर रहा हूँ, फिर ऐसा भय क्यों दिखा रहे हैं?'

प्रभु ने प्रार्थना सुन ली और साँप वहाँ से कहीं खिसक गया। खिसक क्या गया, वहीं जा पहुँचा, जहाँ मूर्ति स्थापित होने जा रही थी! उस घटना को हुए सैकड़ों वर्ष बीत गए हैं, परन्तु वह सर्प कभी-कभी दिखाई देता है और अपने चमत्कार भी दिखा देता है। उसे प्रति-दिन धान का लावा और दूध चढ़ाया जाता है और उसे वह ग्रहण भी करता है। उसके एक ही चमत्कार का यहाँ उल्लेख करना पर्याप्त होगा।

श्री लोकनाथ जी की जमींदारी से जो गल्ला (अन्न) आता, उसे छानने - बीनने के लिए बहुत-सी मजदूरिनें नियुक्त थीं। अपने स्वभावानुसार वे अन्न चुराकर भी ले जाया करती थीं। एक दिन एक मजदूरिन ने अन्न चुराकर अपने आँचल में छिपा रक्खा था। **'नाग - राज'** ने बड़ी युक्ति से चोरी पकड़ ली। वे धीरे से कहीं से आ गए और उसके शरीर में लिपट गए। बेचारी मजदूरिन बड़ी घबड़ाई और चिल्ला कर इधर-उधर छटपटाने लगी। इस झाड़-झपट में उसका पल्ला खुल गया और आँचल में

छिपाया हुआ अन्न चारों तरफ बिखर गया। **'नाग-राज'** ने उसे छोड़ दिया और वे जैसे आए थे, वैसे ही कहीं चल दिए। इससे स्पष्ट है कि लोकनाथ जी के घर की देख-भाल और रक्षा **'नाग - राज'** किया करते हैं।

अब **'बटुकनाथ जी'** का चमत्कार देखिए। मूर्ति गाड़ी पर चढ़ा दी गई और गाड़ीवान के स्थान में एक ब्राह्मण को गाड़ी हाँकने के लिए बैठा दिया गया। यह बात **'बटुक जी'** को अच्छी नहीं लगी। गाड़ी वहीं रुक गई। बहुत प्रयत्न करने पर भी वह आगे न बढ़ सकी। तब लोकनाथ जी के मन में प्रेरणा हुई कि भगवान् मेरे हाथ से गाड़ी हँकाना चाहते हैं। उन्होंने गाड़ी पर चढ़ कर बाग संभाली, तो गाड़ी फूल की तरह हलकी होकर दौड़ने लगी। इस प्रकार जहाँ-जहाँ गाड़ी रुकी, वहाँ-वहाँ उन्होंने **'शिव-मन्दिर'** बनवा दिए हैं। **'बटुकनाथ जी'** सकुशल घर पहुँच गए और बड़े ठाठ तथा भक्ति - भाव से उनकी सेवा-पूजा होने लगी। लोकनाथ जी ने उनकी सेवा-पूजा के लिए बहुत-सी देवोत्तर भूमि छोड़ द है, जिससे सेवा-पूजा का कार्य चलता जा रहा है।

लोकनाथ जी के पश्चात् उनके भ्रातुष्पुत्र उत्तराधिकारी हुए। उनके पुत्र परेशनाथ, परेशनाथ के पौत्र उमानाथ और उनकी सातवीं पीढ़ी में सुप्रसिद्ध विद्वान् दान-वीर तारकनाथ हुए। तारकनाथ जी के पुत्र अमरनाथ जी उस जमींदारी और जागीर के स्वत्वाधिकारी इस कथा के लिखते समय सम्वत् २००९ में विद्यमान थे। ये सब **'महाशय जी'** ही कहाते थे और कहाते भी हैं। वंश-परम्परया इनके घर में **'श्री बटुक जी'** उनकी सुरक्षा करते हैं। उनको रोट, आटे के लड्डू, मछली, भात, बरा, चने की घुंघनी आदि का भोग लगता है और नियमित पर्व-दिन में 'छाग-बलि' भी दी जाती है। शाक्त - सम्प्रदायानुसार ही उनकी आराधना होती है।

स्वर्गीय बाबू तारकनाथ जी के समय में भी **'बटुकनाथ जी'** के अनेक चमत्कार देखे गए, जिनमें से दो - एक का यहाँ उल्लेख कर दिया जाता है। तारकनाथ जी के जामाता बाबू रामचन्द्र सिंह विश्वास, जो मुर्शिदाबाद के रहनेवाले थे और इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल के पद पर थे, सन् १९१८ में ऐसे बीमार हुए कि उनके जीने की कोई आशा नहीं रही। उनकी पत्नी अर्थात् तारक जी की कन्या ने **'बटुक जी'** के चरणों में सात दिन तक धरना दिया, तब **'बटुक जी'** की मूर्ति से पसीना चूने लगा। यहाँ तक कि मूर्ति में मोम से जो चाँदी की आँखें जमाई जाती थीं, वे भी पसीने के कारण नहीं जमती थीं और चन्दन भी बह जाता था। **'बटुक जी'** ने धरना देनेवाली कन्या को एक जड़ी अमुक स्थान से निकाल कर खिलाने की स्वप्न में आज्ञा दी। जड़ी मिल भी गई, परन्तु डाक्टरों की अतिरिक्त सावधानी से वह खिलाई नहीं गई और बाबू रामचन्द्र की मृत्यु हो गई।

इसी प्रकार बाबू तारकनाथ जी का एक मुकदमा विलायत में प्रीवी कौंसिल में चल रहा था। एक दिन क्या देखते हैं कि **'बटुक जी'** के मन्दिर का द्वार बन्द है, किसी प्रकार खुलता नहीं है! तब रात में तारक जी को स्वप्न हुआ कि **'मैं विलायत में मुकदमे की पैरवी कर रहा हूँ। लौटूँगा, तब द्वार खोल दूँगा।'** हुआ भी ऐसा ही। तीसरे दिन आप ही द्वार खुल गया और तारक जी मुकदमा जीत गए।

तीसरी घटना और भी विलक्षण है। एक तेली के यहाँ से **'बटुक जी'** को चढ़ाने के लिए एक पाव तेल प्रति-दिन आता था। तेली ने एक दिन तेल नहीं दिया और पुजारी को डाँट बताई कि 'पाव

'साधना' और 'कर्म'-रहस्य

श्रीयुत बदनसिंह जी, रायभा, आगरा (उ० प्र०)

[दिनाङ्क ५ जून, ६३ को श्री बदनसिंह जी का अकस्मात् ५६ वर्ष की उम्र में स्वर्ग-वास हो जाने से 'आध्यात्मिक हिन्दी-जगत्' एक सिद्ध कर्मठ लेखनी से वञ्चित हो गया, जिसकी पूर्ति कदाचित् ही हो पाए। प्रातः-स्मरणीय 'राष्ट्र-गुरु' श्री स्वामी जी की कृपा से आपकी लेखनी से जो धारा-प्रवाह लेखन-कार्य हुआ, वह अपने ढंग का अनूठा है। उस ऐतिहासिक कार्य का परिचय देने के लिए एक स्वतन्त्र 'अङ्क' की आवश्यकता होगी। अपने इस ऐतिहासिक कृतित्व से श्री बदनसिंह जी अमर हैं, इसमें सन्देह नहीं। आपकी दिव्यात्मा को हमारी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।—सं०]

हमारे कर्मों तथा हम जिन कर्म या पदार्थों के सम्पर्क में आते हैं, उनका संस्कार हमारे **चित्त** पर पड़ता है। जहाँ हमारा जितना मनो-योग होता है, **चित्त** का रेखाङ्कन भी वहाँ उतना ही स्पष्ट होता है। हमारे समीप चाहे जो होता रहे; यदि हमारा तनिक भी ध्यान उधर नहीं गया है, तो हमारे चित्त पर उसका कोई संस्कार नहीं पड़ता। प्रगाढ़ निद्रा में हमारा मनो-योग कहीं नहीं होता, अतः हमारे हृदय पर उस समय का कोई संस्कार अंकित नहीं होता। चित्त पर पड़े हुए संस्कारों के भी दो

भर तेल भैरव जी को थोड़े ही लगता है। कुछ उनको चढ़ाते और बचा-खुचा घर ले जाकर अपने काम में लाते हो! ऐसा न करते, तो भैरव जी को आज तेल की कमी न पड़ती।'

बेचारा पुजारी कुछ उत्तर नहीं दे सका, परन्तु **'बटुक जी'** को यह बात अखर गई। उन्होंने रात्रि के समय तेली के सरसों के खेत में जाकर सारा खेत ही उजाड़ डाला। सबेरे वह क्या देखता है कि सारा खेत चौपट हो गया है, मानों किसी ने खड़ाऊँ पहन कर उसे कुचल डाला हो! खेत में खड़ाऊँ के चिह्न स्पष्ट देख पड़ते थे। पूजा के समय देखा गया कि मूर्ति के सामने जो खड़ाऊँ रक्खी रहती थीं, उनमें सरसों की पत्ती और बालें चिपटी हुई हैं। उन्होंने इस चमत्कार से चेता दिया कि वे भक्तों पर कृपा करने में जैसे फूल से भी कोमल और कृपालु हैं, वैसे दुष्टों को दण्ड देने में वज्र से भी कठोर और महान् उग्र हैं। यह भक्त की सच्ची भक्ति की महिमा है।

आज वही महाशय जी का घर है, वही मूर्ति है और वही सेवा-पूजा का बाहरी ठाठ है, पर वह वैभव, वह सात्त्विक भाव, वह दान-शूरता, वह प्रभाव कहाँ गया, पता नहीं! महाशय जी का परिवार विपत्ति में है, क्यों? जान पड़ता है, उनके उत्तराधिकारियों का, नई चमक-दमक में आकर, दैवी-जगत् से वह सम्बन्ध नहीं रहा है। मूर्ति में केन्द्रित वह दैवी-शक्ति इसी कारण से सर्व-व्यापिनी महा-शक्ति में मिल गई है।

इससे सिद्ध है कि चाहे ईश्वर ने मनुष्य को भले ही बनाया हो, वह अन्तर्जगत् की बात है, किन्तु जब भक्त अपने सच्चे शुद्ध-भाव से भगवान् का निर्माण करता है, उनका आवाहन करता है, तब भगवान् भक्त के वशीभूत हो जाते हैं। तब भक्त के लिए कोई बात असम्भव नहीं रह जाती। आइए, हम भी भक्ति-भाव से **'भूत-नाथ'** के चरणों में शरणापन्न हो जायँ और उनसे अपने परम कल्याण की याचना करें।

रूप होते हैं। एक तो **कर्म-रूप** और दूसरा **स्मृति-रूप**। जिन संस्कारों को हम केवल अच्छा या बुरा मान-कर ग्रहण करते हैं जिनमें हमारा **'अहम्'** या **'स्वम्'** भाव नहीं है, वे संस्कार **स्मृति-रूप हैं**। वे केवल ज्ञानोत्पादक हैं। उनसे उस श्रेणी की विज्ञता प्राप्त होती है; जिस प्रकार वे हैं, किन्तु जिन संस्कारों में हमारा कर्तृत्व-अहंकार रहा है, वे संस्कार **कर्म-रूप** होते हैं।

'स्मृति-रूप-संस्कार' बहुधा नष्ट होते रहते हैं। अहं-भाव से गृहीत **कर्म-रूप-संस्कार** विस्मृति के गर्भ में जाकर भी मिटते नहीं। वे अन्तर्मन में सञ्चित रहते हैं। हम जिन पदार्थों या भावों को ग्रहण करते हैं और जिनमें हमारा **'अहम्'** राग या द्वेष-बुद्धि से युक्त होता है, **चित्त** पर उनका रेखाङ्कन हो जाता है। स्रष्टा का यह अङ्कन-क्रम अद्भुत है। **चित्त** पर पड़ा एक संस्कार, जन्म-जन्मान्तर में जब वह क्रिया-रूप से प्रकट होगा, तो मिट जाएगा। रिकार्ड या छाया-चित्रों के समान चित्त का संस्काराङ्कन स्थायी नहीं। एक संस्कार फल प्रकट करके समाप्त हो जाता है; किन्तु जब वह क्रिया के रूप में व्यक्त होता है, हम उसमें पुनः अहङ्कार कर लेते हैं और फलतः पूर्व के समान ही नवीन अङ्कन पुनः हो जाता है, जो पुनः क्रिया के रूप में व्यक्त होने तक बना रहेगा। **चित्त** पर संस्कारों का यही क्रम बराबर चला करता है। यदि कोई कर्तृत्वाभिमान से रहित होकर कर्म करे, तो ये संस्कार क्रिया के रूप में व्यक्त होकर समाप्त हो जाएँगे। चूँकि कर्तृत्वाभिमान केवल मनुष्य में ही होता है, इसीलिए शास्त्र ने मनुष्य-योनि को ही **कर्म-योनि** बतलाया है।

कर्म के चार-अङ्ग **हैं—**१ कर्म करने की इच्छा, २ क्रिया, ३ क्रिया या परिणाम और ४ क्रिया में अहं-भाव। पहले किसी भी कर्म को करने की इच्छा होती है। यह आवश्यक नहीं कि इच्छा 'कार्य'-रूप में प्रकट हो ही। **अधिकांश** इच्छाएँ कार्य नहीं करतीं। इच्छा होती है, 'संस्कार' के कारण और 'संस्कार' होते हैं, पूर्व-कृत कर्मों के। 'संस्कार' मनुष्य में केवल इच्छा उत्पन्न कर सकते हैं। इच्छाओं पर विजय पाना मनुष्य के वश में होता है और इसीलिए मनुष्य 'कर्म' करने में स्वतन्त्र माना गया है। वह **पुरुषार्थ** कर सकता है। केवल फल भोगने में वह प्रारब्ध पर-तन्त्र है। 'मन' केवल विचारों को ग्रहण करता है। मनुष्य का 'पुरुषार्थ' यहीं प्रयुक्त होता है कि वह कैसे भाव रखता है। 'मन' यदि सात्विक विचार-स्तरों में रहेगा, तो उसमें सात्विक विचारों का संचार होगा। फलतः वह निर्मल होगा और तब अहङ्कार-हीन स्थिति प्राप्त होगी। सत्कार्य एवं सद्-विचार ही अभीष्ट हैं। बुद्धि को शुद्ध एवं निर्लिप्त रहना चाहिए क्योंकि 'संस्कार', बुद्धि को पराभूत नहीं करते।

अहं-भाव-युक्त कर्मों के शुभाशुभ 'संस्कार' बनते हैं। ये कर्म मानसिक, वाचिक तथा शारीरिक होते हैं। समष्टि चालक की इच्छा पर निर्भर रहनेवाले व्यक्ति के द्वारा पाप नहीं हो सकता और पूर्ण-रूपेण समर्पण करने पर, उसके कर्म निरपेक्ष भाव से सम्पन्न हुए होते हैं, जो कि संस्कार-शून्य होते हैं। हमारे कर्मों के और भी भागीदार होते हैं और दूसरों के कर्म हमें प्राप्त होते हैं। विश्व में विनिमय चलता है। जिस प्रकार हमारे शरीर के परमाणु समीपस्थ में सञ्चरित होते हैं और उनके हममें, उसी प्रकार **कर्मों का भी विनिमय होता** है। अवश्य ही, **कर्म की विनिमय-प्रणाली** में भेद है। 'स्थूल' का विनिमय होता है—सामीप्य के कारण और **'कर्म' का विनिमय होता** है—**आसक्ति या द्वेष के कारण। कर्मों के सहायक और अनुमोदक** भी 'कर्म' में भाग पाते हैं। इसी प्रकार विरोधी, बाधक एवं द्वेषी कर्म-नाश के पाप में भाग पाते हैं।

राजा के कर्म में, प्रजा भाग पाती है। इसीलिए प्रजा-द्वारा दुर्गुणी राजा को दमन किए जाने की शास्त्र अनुमति देता है। इसी प्रकार गुरु पर उत्तरदायित्व है—शिष्य को सन्मार्ग पर चलाने का। शिष्य ने गुरु से सत्प्रेरणा एवं शक्ति प्राप्त की है। इससे गुरु को शिष्य के कर्मों का अंश प्राप्त होता है। शिष्य का कर्तव्य है कि वह सद्-गुरु चुने क्योंकि गुरु से उसका मानस सम्पर्क होता है और उसे गुरु के कर्मों का अंश प्राप्त होता है।

अनुमोदनादि के अतिरिक्त कर्म-विनिमय होता है—आसक्ति के कारण। यह आसक्ति जितनी प्रगाढ़ होती है, उतने ही अधिक कर्मों का विनिमय होता है। कर्मों का नाश तो होता नहीं। अतः जब किसी द्वन्द्वातीत मुक्त पुरुष का शरीर-पात होता है, तो उसके शुभ कर्म सेवकों को तथा अशुभ कर्म द्वेषियों को अनुराग एवं द्वेष की मात्रा के अनुरूप प्राप्त होते हैं। पति के कर्म पत्नी को और पत्नी के कर्म पति को प्राप्त होते हैं। माता, पिता, पुत्र आदि सबके कर्मों का विनिमय होता है। मातृ एवं पितृ-कुल के पितरों तक को कर्मांश प्राप्त होता है। ये कर्मांश कर्ता के राग - द्वेष से ही विनियमित हों, यह आवश्यक नहीं। कर्त्ता के प्रति दूसरों का राग-द्वेष भी विनिमय का कारण होता है। इसीलिए अनासक्त महा-पुरुष के प्रादुर्भाव से उसकी कई पीढ़ियों के पितरों का उद्धार हो जाता है क्योंकि पितरों को तो उसके प्रति आसक्ति होती ही है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्म करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वह अपने शुभाशुभ कर्मों के द्वारा कितने जनों पर प्रभाव डालता है। इस प्रकार उसका उत्तरदायित्व कितना महान् है! मनुष्य के कर्मों का परिणाम भी भाव पर निर्भर करता है।

'सञ्चित' कर्म-राशि अनन्त और अपार है। यह सम्भव ही नहीं कि उसका दो-चार जीवनों में उपभोग कर लिया जाय। उसमें से एक अंश उपभोग के लिए पृथक् होता है और इसी अंश के अनुसार शरीर प्राप्त होता है। इस अंश को **'प्रारब्ध'** कहते हैं। जब तक यह अंश है, तब तक शरीर रहता है और अंश के शुभाशुभ भोग प्राप्त होते हैं। **'प्रारब्ध'** मुक्त पुरुषों को भी भोगना पड़ता है। **'प्रारब्ध'** इस जन्म के लिए **'सञ्चित'** से पृथक् हुआ भाग है। यह जन्म एवं इसके भोग **'प्रारब्ध'** के अनुसार हैं। **'सञ्चित'** सुषुप्त है। अवश्य ही नए कर्मों में से कुछ यदि अत्यन्त प्रबल हों और **'प्रारब्ध'** कर्मों से उनका सामञ्जस्य सम्भव हो, तो वे **'प्रारब्ध'** में सम्मिलित होकर इसी जन्म में फल दे देते हैं। सकाम जप, तप, अनुष्ठानादि का फल इसी जीवन में इसी प्रकार प्राप्त होता है। शास्त्र कहता है—

त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः। अत्युग्र-पुण्य-पापानामिहैव फलमश्नुते।

अर्थात् तीन वर्ष, तीन महीने, तीन पक्ष या तीन दिन में ही अत्यन्त उग्र पाप या पुण्यों का फल इसी जीवन में जीव प्राप्त कर लेता है। 'गीता', ८-६ कहती है—

यं यं वापि स्मरन् भावं, त्यजत्यन्ते कलेवरम्। तं तमेवैति कौन्तेय! सदा तद्-भाव-भावितः॥

अर्थात् मनुष्य जिन-जिन भावों का स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है, उन्हीं भावनाओं से भावित रहने के कारण वह उन-उन स्वरूपों (योनियों) को प्राप्त करता है।

'चण्डी' के ५१ वें वर्ष [अप्रैल, ९२] से प्रकाशित

साधनमाला

[आषाढ़-अङ्क (जुलाई, ९३) से आगे]

(११३)

श्री स्वर्णाकर्षण भैरव स्तोत्र

परम पूज्य पण्डित कृष्णानन्द जी मिश्र वैद्य, ककरा, प्रयागराज (उ० प्र०)

।। श्री मार्कण्डेय उवाच ।।

भगवन् ! प्रमथाधोश ! शिव-तुल्य-पराक्रम ! पूर्वमुक्तस्त्वया मन्त्रं, भैरवस्य महात्मनः ।।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि, तस्य स्तोत्रमनुत्तमं । तत् केनोक्तं पुरा स्तोत्रं, पठनात्तस्य किं फलम् ।।
तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि, ब्रूहि मे नन्दिकेश्वर !।।

।। श्री नन्दिकेश्वर उवाच ।।

इदं ब्रह्मन् ! महा-भाग, लोकानामुपकारक ! स्तोत्रं वटुक-नाथस्य, दुर्लभं भुवन-त्रये ।।
सर्व-पाप - प्रशमनं, सर्व-सम्पत्ति-दायकम् । दारिद्रच-शमनं पुंसामापदा-भय-हारकम् ।।
अष्टैश्वर्य - प्रदं नृणां, पराजय-विनाशनम् । महा-कान्ति-प्रदं चैव, सोम-सौन्दर्य-दायकम् ।।
महा-कीर्त्ति-प्रदं नित्यमपकीर्ति-विनाशनम् । खड्गाद्यष्ट-महा-सिद्धि-प्रदायकमनुत्तमम् ।।
मुक्ति-मुक्ति-प्रदं स्तोत्रं, भैरवस्य महात्मनः । न वक्तव्यं निराचारे, हि पुत्राय च सर्वथा ।।
शुचये गुरु-भक्ताय, शुचयेऽपि तपस्विने । महा-भैरव-भक्ताय, सेविते निर्धनाय च ।।
निज-भक्ताय वक्तव्यमन्यथा शापमाप्नुयात् । स्तोत्रमेतत् भैरवस्य, ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मनः ।।
श्रृणुष्व ब्रूहितो ब्रह्मन् ! सर्व-काम-प्रदायकम् ।।

विनियोग—ॐ अस्य श्रीस्वर्णाकर्षण-भैरव-स्तोत्रस्य ब्रह्मा ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । श्रीस्वर्णाकर्षण-भैरव - देवता । ह्रीं बीजं । क्लीं शक्तिः । सः कीलकम् । मम सर्व-काम-सिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः ।

ध्यान—मन्दार-द्रुम-मूल-भाजि विजिते रत्नासने संस्थिते ।
दिव्यं चारुण - चञ्चुकाधर - रुचा देव्या कृतालिङ्गनः ।।
भक्तेभ्यः कर-रत्न-पात्र-भरितं स्वर्णं दधानो भृशम् ।
स्वर्णाकर्षण - भैरवो भवतु मे स्वर्गापवर्ग-प्रदः ।।

॥ स्तोत्र-पाठ ॥

ॐ नमस्तेऽस्तु भैरवाय, ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मने, नमः त्रैलोक्य-वन्द्याय, वरदाय परात्मने ।
रत्न-सिंहासनस्थाय, दिव्याभरण-शोभिने ।
नमस्तेऽनेक-हस्ताय, ह्यनेक-शिरसे नमः । नमस्तेऽनेक-नेत्राय, ह्यनेक - विभवे नमः ।
नमस्तेऽनेक-कण्ठाय, ह्यनेकान्ताय ते नमः । नमोस्त्वनेकैश्वर्याय, ह्यनेक-दिव्य-तेजसे ।
अनेकायुध-युक्ताय, ह्यनेक-सुर-सेविने । अनेक - गुण - युक्ताय, महा - देवाय ते नमः ।
नमो दारिद्रच-कालाय, महा-सम्पत्-प्रदायिने । श्रीभैरवी-प्रयुक्ताय, त्रिलोकेशाय ते नमः ।
दिगम्बर ! नमस्तुभ्यं, दिगीशाय नमो नमः । नमोऽस्तु दैत्य-कालाय, पाप-कालाय ते नमः ।
सर्वज्ञाय नमस्तुभ्यं, नमस्ते दिव्य-चक्षुषे । अजिताय नमस्तुभ्यं, जितामित्राय ते नमः ।
नमस्ते रुद्र-पुत्राय, गण - नाथाय ते नमः । नमस्ते वीर-वीराय, महा-वीराय ते नमः ।
नमोऽस्त्वनन्त-वीर्याय, महा-घोराय ते नमः । नमस्ते घोर-घोराय विश्व-घोराय ते नमः ।
नमः उग्राय शान्ताय, भक्तेभ्यः शान्ति-दायिने । गुरवे सर्व-लोकानां, नमः प्रणव-रूपिणे ।
नमस्ते वाग्-भवाख्याय, दीर्घ-कामाय ते नमः । नमस्ते काम-राजाय, योषित्कामाय ते नमः ।
दीर्घ-माया-स्वरूपाय, महा-माया-पते नमः । सृष्टि-माया-स्वरूपाय, विसर्गाय सम्यायिने ।
रुद्र-लोकेश - पूज्याय, ह्यापदुद्धारणाय च । नमोऽजामल - बद्धाय, सुवर्णाकर्षणाय ते ।
नमो नमो भैरवाय, महा-दारिद्रच-नाशिने । उन्मूलन-कर्मठाय, ह्यलक्ष्म्या सर्वदा नमः ।
नमो लोक-त्रयेशाय, स्वानन्द-निहिताय ते । नमः श्रीबीज-रूपाय, सर्व-काम-प्रदायिने ।
नमो महा-भैरवाय, श्रीरूपाय नमो नमः । धनाध्यक्ष ! नमस्तुभ्यं, शरण्याय नमो नमः ।
नमः प्रसन्न-रूपाय, ह्यादि-देवाय ते नमः । नमस्त मन्त्र-रूपाय, नमस्ते रत्न-रूपिणे ।
नमस्ते स्वर्ण-रूपाय, सुवर्णाय नमो नमः । नमः सुवर्ण-वर्णाय, महा-पुण्याय ते नमः ।
नमः शुद्धाय बुद्धाय, नमः संसार-तारिणे । नमो देवाय गुह्याय, प्रबलाय नमो नमः ।
नमस्ते बल-रूपाय, परेषां बल-नाशिने । नमस्ते स्वर्ग-संस्थाय, नमो भूर्लोक-वासिने ।
नमः पाताल-वासाय, निराधाराय ते नमः । नमो नमः स्वतन्त्राय, ह्यनन्ताय नमो नमः ।
द्वि-भुजाय नमस्तुभ्यं, भुज-त्रय-सुशोभिने । नमोऽणिमादि-सिद्धाय, स्वर्ण-हस्ताय ते नमः ।

पूर्ण-चन्द्र-प्रतीकाश-वदनाम्भोज-शोभिने । नमस्ते स्वर्ण-रूपाय, स्वर्णालङ्कार - शोभिने ।
नमः स्वर्णाकर्षणाय, स्वर्णाभाय च ते नमः । नमस्ते स्वर्ण-कण्ठाय, स्वर्णालङ्कार-धारिणे ।
स्वर्ण-सिंहासनस्थाय, स्वर्ण-पादाय ते नमः, नमः स्वर्णाभ-पाराय, स्वर्ण-काञ्ची-सुशोभिने ।
नमस्ते स्वर्ण-जङ्घाय, भक्त-काम-दुघात्मने । नमस्ते स्वर्ण-भक्तानां, कल्प-वृक्ष-स्वरूपिणे ।
चिन्तामणि-स्वरूपाय, नमो ब्रह्मादि - सेविने । कल्पद्रुमाधः-संस्थाय, बहु-स्वर्ण-प्रदायिने ।
भय-कालाय भक्तेभ्यः, सर्वाभीष्ट-प्रदायिने । नमो हेमादि-कर्षाय, भैरवाय नमो नमः ।
स्तवेनानेन सन्तुष्टो, भव लोकेश - भैरव ! पश्य मां करुणाविष्ट, शरणागत-वत्सल !
श्रीभैरव धनाध्यक्ष, शरणं त्वां भजाम्यहम् । प्रसीद सकलान् कामान्, प्रयच्छ मम सर्वदा ।

॥ फल-श्रुति ॥

श्रीमहा-भैरवस्येदं, स्तोत्रं सूक्तं सु-दुर्लभम् । मन्त्रात्मकं महा-पुण्यं, सर्वैश्वर्य-प्रदायकम् ।
यः पठेन्नित्यमेकाग्रं, पातकैः स विमुच्यते । लभते चामला-लक्ष्मीमष्टैश्वर्यमवाप्नुयात् ।
चिन्तामणिमवाप्नोति, धेनुं कल्पतरुं ध्रुवम् । स्वर्ण-राशिमवाप्नोति, सिद्धिमेव स मानवः ।
संध्याय यः पठेत्स्तोत्रं, दशावृत्त्या नरोत्तमैः । स्वप्ने श्रीभैरवस्तस्य, साक्षाद्भूत्वो जगद्गुरुः ।
स्वर्ण-राशि ददात्येव, तत्क्षणान्नास्ति संशयः । सर्वदा यः पठेत् स्तोत्रं, भैरवस्य महात्मनः ।
लोक-त्रयं वशी कुर्यात्, अचलां श्रियं चाप्नुयात्, न भयं लभते क्वापि, विघ्न-भूतादि-सम्भव ।
म्रियन्ते शत्रवोऽवश्यमलक्ष्मी-नाशमाप्नुयात् । अक्षयं लभते सौख्यं, सर्वदा मानवोत्तमः ।
अष्ट-पञ्चाशतार्णाढ्यो, मन्त्र-राजः प्रकीर्तितः । दारिद्र्य-दुःख-शमनं, स्वर्णाकर्षण-कारकः ।
य येन संजपेत् धीमान्, स्तोत्रं वा प्रपठेत् सदा । महा-भैरव-सायुज्यं, स्वान्त-काले भवेद् ध्रुवं ।

मूल-मन्त्र—ॐ ऐं क्लां क्लीं क्लूं ह्रां ह्रीं ह्रूं सः वं आपदुद्धारणाय अजामल-बद्धाय लोकेश्वराय स्वर्णाकर्षण-भैरवाय मम दारिद्र्य-विद्वेषणाय श्रीं महा-भैरवाय नमः ।

(११४)

श्री दारुण सप्तक

श्रीलाला मँगनीराम, अधिवक्ता, समस्तीपुर (बिहार)

विनियोग—ॐ अस्य श्रीदारुण-सप्तक-नाम-स्तोत्रस्य महा-मन्त्रस्य श्रीवामदेव ऋषिः, अति-जगती छन्दः, शरभ-सालुव-रूपी कालाग्नि-रुद्रो देवता, खीं वीजं, ह्रीं शक्तिः, हूं फट् कीलकं, मम ये ये प्रतिकूल-कारिणस्तेषां पलायनार्थे शरभ-सालुवस्य दारुण-सप्तक-पारायणमहं करिष्ये ॥

ऋष्यादि-न्यास—श्रीवामदेव-ऋषये नमः शिरसि । अति-जगती-छन्दसे नमः मुखे । श्रीशरभ-सालुव-रूपी कालाग्नि-रुद्र - देवतायै नमः हृदि । खीं वीजाय नमः लिङ्गे । ह्लीं शक्त्यै नमः नाभौ । हूं फट् कीलकाय नमः पादयोः । मम ये ये प्रतिकूल-कारिणस्तेषां पलायनार्थे शरभ-सालुवस्य दारुण-सप्तक-पारायणे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

कर-न्यास—ॐ ह्लां खां अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्लीं खीं तर्ज्जनीभ्यां नमः । ॐ ह्लूं खूं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ ह्लैं खैं अनामिकाभ्यां नमः । ॐ ह्लौं खौं कनिष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्लः खः कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः ।।

अङ्ग-न्यास—ॐ ह्लां खां हृदयाय नमः । ॐ ह्लीं खीं शिरसे स्वाहा । ॐ ह्लूं खूं शिखायै वषट् । ॐ ह्लैं खैं कवचाय हुं । ॐ ह्लौं खौं नेत्र-त्रयाय वौषट् । ॐ ह्लः खः स्त्रीं अस्त्राय फट् ।।

ध्यान—चन्द्रार्काग्निस्त्रि-दृष्टिः कुलिश-वर-नखश्चलाऽत्युग्र-जिह्वा ।
कालो-दुर्गा च पक्षौ हृदय-जठरगो भैरवो वाडवाग्निः ।।
ऊरुस्थौ व्याधि-मृत्यू शरभः नख-वरश्चण्ड-वातातिवेगः ।
संहर्त्ता सर्व-शत्रून् स जयतु शरभः सालुवः पक्षि-राजः ।।

अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि जिनके नेत्र हैं, वज्र के समान तीक्ष्ण नख हैं, चञ्चल और उग्र जिह्वा है । काली और दुर्गा उनके दो पक्ष (डैने) हैं, हृदय में भैरव और पेट में बड़वाग्नि है । दोनों जङ्घाओं में व्याधि और मृत्यु हैं, प्रचण्ड आँधी के समान जिनका वेग है । ऐसे भगवान् पक्षि-राज शरभ सालुव सब शत्रुओं के नाश करनेवाले हैं, उनकी जय हो ।

इसके बाद निम्न-लिखित मन्त्रों द्वारा पञ्चोपचार-पूजा कर धेनु और योनि मुद्राएँ दिखाए तथा—'ॐ ह्लों खीं खीं कं घ्राणे हूं फट्' मन्त्र द्वारा मस्तक से पैरों तक व्यापक न्यास करे ।

पञ्चोपचार पूजा-मन्त्र—१. इदं स्नानीयं रुद्राय नमः । २. इदं पुष्पं रुद्राय नमः । ३. इदं चन्दनं रुद्राय नमः । ४. इदमक्षतं रुद्राय नमः । ५. इदं नैवेद्यं रुद्राय नमः ।

ॐ ह्लीं खीं खीं कं घ्राणे हूं फट् ।

कल्पान्ते कार्तवीर्याखिल - परिकरणस्ताम् पार-प्रभूतम् ।
ज्वाला-मालाऽग्नि-दग्धं स्मर-तनु-सकलं त्वामहं सालुवेशम् ।।

याचे त्वत्-पाद-पद्मं प्रणहित-मनसं द्वेष्टि मां यः क्रियाभिः ।
तस्य प्राणावसानं कुरु शिव ! भवान् शूल-भिन्नस्य तूर्णम् ।।

ॐ नमो भगवते बड़वानल-भैरवाय ज्वल-ज्वल वैरि-कुलं दह-दह सर्व-शत्रून्नाशयोच्चाटय हूं फट् ।।१

ॐ ह्लीं खीं खीं कं घ्राणे हूं फट् ।

शम्भो ! त्वद्धस्त-कुन्त-क्षत-रिपु-हृदयान्निस्सृतं लोहितौघम् ।
पीत्वा पीत्वाऽति-दर्पं दिशि-दिशि विचरंस्त्वद्-गणाः शृङ्ग-मुख्याः ।।
गर्जन्तु क्षिप्र-वेगा निखिल-भय-हराः भीषणाः खेल-लोलाः ।
सन्त्रस्ता ब्रह्म-देवाः शरभ खग-पते ! त्राहि नः सालुवेश ! ।।

ॐ नमो भगवते बड़वानल-भैरवाय ज्वल-ज्वल वैरिकुलं दह-दह सर्व-शत्रून्नाशयोच्चाटय हूं फट् ।।२

ॐ ह्लीं खीं खीं कं घ्राणे हूं फट् ।

सर्वौघं सर्व - निष्ठं सकल - भय - हरं तत्त्व-रूपं शरण्यम् ।
याचेऽहं त्वाममोघं परिकर-सहितं द्वेष्टि योऽधिष्ठितं माम् ।।
श्रीशम्भो ! त्वत्-कराब्ज-स्थित-हल-कठिन-ग्रस्त-वक्ष-स्थलस्य–
प्राणाः सद्यः स-दूत - ग्रहण - परिभवाः क्रोश-पूर्वं - प्रयान्तु ।।

ॐ नमो भगवते बड़वानल-भैरवाय ज्वल-ज्वल वैरिकुलं दह-दह सर्व-शत्रून्नाशयोच्चाटय हूं फट् ।।३

ॐ ह्लीं खीं खीं कं घ्राणे हूं फट् ।

भीम-क्षोणी वराहं तव पद - कमल - ध्यान - निर्धूत - पापः ।
कृत्यैर्मुक्तो विहङ्गाखिल - कुल - सुपते ! स्वेच्छया बद्ध-मूर्ते !
तूर्णं त्वत्पाणि - पद्म - प्रधृत - परशुना खण्ड-खण्डी-कृताङ्गः ।
मद्-द्वेषी यातु याम्यं पुरमति - कलुषं काल - पाशाग्र-बद्धः ।।

ॐ नमो भगवते बड़वानल-भैरवाय ज्वल-ज्वल वैरिकुलं दह-दह सर्व-शत्रून्नाशयोच्चाटय हूं फट् ।।४

ॐ ह्लीं खीं खीं कं घ्राणे हूं फट् ।

भीम ! श्रीशालुवेश ! प्रणत-भय-हर ! प्राण-हृद् दुर्मदानाम् ।
याचे पञ्चास्य रुद्र ! प्रशमन - विहित - स्वेच्छयाऽऽबद्ध-मूर्ते !
त्वामेवाशु त्वदंघ्य्रष्टक - नख - विलुठद् - ग्रीव-जिह्वोदरस्य,
प्राणोत्क्रामं प्रसह्यं प्रकटय उदरे चास्य दुष्टाधमस्य ।।

ॐ नमो भगवते बड़वानल-भैरवाय ज्वल-ज्वल वैरिकुलं दह-दह सर्व-शत्रून्नाशयोच्चाटय हूं फट् ।।५

ॐ ह्रीं खीं खीं कं प्राणे हूं फट् ।

हे शूलिन् ! वः कराग्र-स्थित-मुशल-गदाऽऽवर्त-वातापिघाता—

पाताऽऽघातारि - यूथं त्रिदश - विघटनोद्धत-वक्त्रा-जटार्द्रा ।।

सन्दृष्ट्याऽयोधने ज्यां निखिल-सुर-गणाश्चाशु नन्दन्तु नाना—

भूता - वेताल - संघापि-वत् तदखिलं प्रीत-चित्ता प्रमत्ता ।।

ॐ नमो भगवते बड़वानल-भैरवाय ज्वल-ज्वल वैरिकुलं दह-दह सर्व-शत्रून्नाशयोच्चाटय हूँ फट् ।।६

ॐ ह्रीं खीं खीं कं प्राणे हूं फट् ।

त्वद्दोर्दण्डाग्र - मुण्ड - प्रकटित - विलसच्चण्ड - कोदण्ड - युक्तै—

र्वाणैर्दिव्यैरनेकैश्शिथिलित - वपुषः क्षीण - कोलाहलस्य ।।

तस्या प्राणावसानं परम - शिव - रुषा साधयाज्ञा-प्रभावैः,

तूर्णं पश्यामि यो मां परि-हसति सदा ह्यादि-मध्यान्त-हेतो ! ।।

ॐ नमो भगवते बड़वानल-भैरवाय ज्वल-ज्वल वैरिकुलं दह-दह सर्व-शत्रून्नाशयोच्चाटय हूं फट् ।।७

फल-श्रुति—इति निशासु सदा नियतः निरामिषो, शुचिर्यम-मुखः शिव-भावम-नुस्मरन् । प्रति-दिनं दश-वारं दिन-त्रयं पठति निग्रह-दारुण-सप्तकम् । इति गुह्यं महा-मन्त्रं, परमं रिपु-नाशनम् । भानु-वारे समारभ्य मङ्गलान्तं जपेत् सुधीः ।

।। इति श्रीआकाश-भैरव-मन्त्रे अभिचार- शरभ-स्तोत्रम् ।।

[**श्री दारुण सप्तक-प्रयोग** का एक विधान **साधन-माला** के अन्तर्गत पहले प्रकाशित हो चुका है । ऊपर एक दूसरा विधान प्रस्तुत है ।—सं०]

(११५)

श्रीराज-राजेश्वर महा-काल स्तोत्रम्

श्री भैरवानन्दनाथ, चकराघाट, सागर (म० प्र०)

कैलास-शिखरे रम्ये, सुखासीनं जगद्-गुरुं । प्रणम्य परया भक्त्या, पार्वती परिपृच्छति ।

।। श्रीपार्वत्युवाच ।।

त्वत्तः श्रुतं पुरा देव, भैरवस्य महात्मनः । नाम्नामष्टोत्तरं शतं, ककरादिमभीष्टदम् । गुह्याद् गुह्य-तरं गुह्यं, सर्वाभीष्टार्थ-साधकम् । तन्मे वदस्व देवेश ! यद्यहं तव वल्लभा ।

।। श्रीशिवोवाच ।।

लक्ष-वार-सहस्राणि, वारिताऽसि पुनः पुनः । स्त्री-स्वभावान्महा-देवि ! पुनस्तत्वं त्वं पृच्छसि । रहस्याति-रहस्यं च, गोप्याद् गोप्यं महत्तरम् । तत्ते वक्ष्यामि देवेशि ! स्नेहात्तव शुचिस्मिते ! कूर्च-युग्मं महा-काल, प्रसीदेति पद-द्वयम् । लज्जा-युग्मं वह्नि-जाया, राजराजेश्वरो महान् ।

(हूँ हूँ महा-काल ! प्रसीद प्रसीद ह्लीं ह्लीं स्वाहा ॥)

मन्त्र-ग्रहण-मात्रेण, भवेत्सत्यं महा-कविः। गद्य-पद्य-मयी वाणी, गङ्गा निर्झरिणी यथा ॥

विनियोग—ॐ अस्य राज-राजेश्वर-श्रीमहा-काल-ककाराद्यष्टोत्तर-शत-नाम-माला-मन्त्रस्य श्रीदक्षिणा-कालिका ऋषिः, विराट् छन्दः, श्रीमहा-कालः देवता, हूँ बीजं, ह्लीं शक्तिः, स्वाहा कीलकं, सर्वार्थ-साधने पाठे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—शिरसि श्रीदक्षिणा-कालिका-ऋषये नमः। मुखे विराट्-छन्दसे नमः। हृदि श्रीमहा-काल-देवतायै नमः। गुह्ये हूं बीजाय नमः। पादयोः ह्लीं शक्तये नमः। नाभौ स्वाहा कीलकाय नमः। सर्वाङ्गे सर्वार्थ-साधने पाठे विनियोगाय नमः।

कर-न्यास—ह्लां अंगुष्ठाभ्यां नमः। ह्लीं तर्जनीभ्यां नमः। ह्लूं मध्यमाभ्यां नमः। ह्लैं अनामिकाभ्यां नमः। ह्लौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ह्लः करतल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः।

षडङ्ग-न्यास—ह्लां हृदयाय नमः। ह्लीं शिरसे स्वाहा। ह्लूं शिखायै वषट्। ह्लैं कवचाय हुम्। ह्लौं नेत्र-त्रयाय वौषट्। ह्लः अस्त्राय फट्। **ध्यान**—

कोटि-कालानलाभासं, चतुर्भुजं त्रि-लोचनं। श्मशानाष्टक-मध्यस्थं, मुण्डाष्टक-विभूषितम्।
पञ्च-प्रेत-स्थितं देवं, त्रि-शूलं डमरुं तथा। खड्गं च खर्परं चैव, वाम-दक्षिण-योगतः।
विभ्रतं सुन्दरं देहं, श्मशान-भस्म-भूषितम्। नाना-शवैः क्रीडमानं, कालिका-हृदय-स्थितम्।
लालयन्तं रतासक्तं, घोर-चुम्बन-तत्परम्। गृध्र-गोमायु-संयुक्तं, फेरवी-गण-संयुतम्।
जटा-पटल-शोभाढ्यं, सर्व-शून्यालय-स्थितम्। सर्व-शून्यं मुण्ड-भूषं, प्रसन्न-वदनं शिवम्।

उक्त प्रकार **'ध्यान'** कर **मानसिक पूजन** करे। मूल-मन्त्र का १०८ बार **'जप'** करे। फिर **अष्टोत्तर-शत-नाम-स्तोत्र** का पाठ करे। यथा—

ॐ कूं कूं कूं कूं शब्द-रतः, क्रूं क्रूं क्रूं क्रूं परायणः।
कवि-कण्ठ-स्थितः कँ ह्लीँ, हूँ कँ कँ कवि-पूर्णदः।
कपाल-कज्जल-समः, कज्जल-प्रिय-तोषणः। कपाल-मालाऽऽभरणः, कपाल-कर-भूषणः।
कपाल-पात्र-सन्तुष्टः, कपालार्घ्य-परायणः। कदम्ब-पुष्प-सम्पूज्यः, कदम्ब-पुष्प-होमदः।
कुल-प्रियः कुल-धरः, कुलाधारः कुलेश्वरः। कौल-व्रत-धरः कर्मः, काम-केलि-प्रियः क्रतुः।
कलह-ह्लीं मन्त्र-वर्णः, कलह-ह्लीं-स्वरूपिणः। कङ्काल-भैरवो देवः, कङ्काल-भैरवेश्वरः।
कादम्बरी-पान-रतः, तथा कादम्बरी-कलः। कराल-भैरवानन्दः, कराल-भैरवेश्वरः।
करालः कलनाधारः, कपर्दीश-वर-प्रदः। कर - वीर - प्रिय-प्राणः, कर-वीर-प्रपूजनः।
कलाधरः काल-कण्ठः, कूटस्थः कोटराश्रयः। करुणः करुणावासः, कौतुकी कालिका-पतिः।

कठिनः कोमलः कर्णः, कृत्तिवासः कलेवरः । कला-निधिः कीर्तिनाथः, कामेन हृदयङ्गमः ।
कृष्णः काशी-पतिः कौलः, कूल-चूड़ामणिः कुलः । कालांजन-समाकारः, कालांजन-निवासिनः ।
कौपीन-धारी कैवर्तः, कृत-वोर्यः कपि-ध्वजः । काम-रूपः काम-गतिः, काम-योग-परायणः ।
काम-सम्मर्दन-रतः, काम-गेह-निवासिनः । कालिका-रमणः कालि-नायकः कालिका-प्रियः ।
कालीशः कालिकाकान्तः, कल्पद्रुम-लता मतः । कुलटालाप-मध्यस्थः, कुलटा-सङ्ग-तोषितः ।
कुलटा-चुम्बनोद्युक्तः, कुलटा-कुच-मर्दनः । केरलाचार-निपुणः, केरलेन्द्र-ग्रह-स्थितः ।
कस्तूरी-तिलकानन्दः, कस्तूरी-तिलक-प्रियः । कस्तूरी-होम-सन्तुष्टः, कस्तूरी-तर्पणोद्यतः ।
कस्तूरी-मार्जनोद्युक्तः, कस्तूरी-कुण्ड-मज्जनः । कामिनी-पुष्प-निलयः, कामिनी-पुष्प-भूषणः ।
कामिनी-कुंड-संलग्नः, कामिनी-कुंड-मध्यगः । कामिनी-मानसाराध्यः, कामिनी-मान-तोषितः ।
काम-मञ्जीर-रणितः, कामदेव-प्रियातुरः । कर्पूरामोद-रुचिरः, कर्पूरामोद-धारिणः ।
कर्पूर-मालाऽऽभरणः, कर्पूरार्णव-मध्यगः । क्रकसः क्रकसाराध्यः, कलाप-पुष्प-रूपिणः ।
कुशलः कुशलाकर्णी, कुक्कुरासङ्ग-तोषितः । कुक्कुरालय-मध्यस्थः, काश्मीर-करवीर-भृत् ।
कूटस्थः क्रूर-दृष्टिश्च, केशवासक्त-मानसः । कुम्भीनस-विभूषाढ्यः, कुम्भीनस-वधोद्यतः ।

॥ फल-श्रुति ॥

नाम्नामष्टोत्तर-शतं, स्तुत्वा महा-काल-देवम् । ककारादि-जगद्वन्द्यं, गोपनीयं प्रयत्नतः ।
य इदं पठते प्रातः, त्रि-सन्ध्यं वा पठेन्नरः । वाञ्छितं समवाप्नोति, नात्र कार्या विचारणा ।
लभते ह्यचलां लक्ष्मीं, देवानामपि दुर्लभाम् । पूजा-काले जपान्ते च, पठनीयं विशेषतः ।
यः पठेत्साधकाधीशः, काली-रूपो हि वर्षतः । पठेद्वा पाठयेद्वापि, शृणोति श्रावयेदपि ।
वाचकं तोषयेद्वापि, स भवेद् भैरवी-तनुः । पश्चिमाभि-मुखं लिङ्गं, वृष-शून्यं शिवालयम् ।
तत्र स्थित्वा पठेन्नाम्नां, सर्व-कामाप्तये शिवे ! भौम-वारे निशीथे च, अष्टम्यां वा निशा-मुखे ।
माष-भक्त-बलिं छागं, कृसरान्नं च पायसं । मद्यं मीनं शोणितं च, दुग्धं मुद्रा-गुडार्द्रकम् ।
बलिं दत्वा पठेत्तत्र, कुबेरादधिको भवेत् । पुरश्चरणमेतस्य, सहस्रावृत्तिरुच्यते ।
महा-काल-समो भूत्वा, यः पठेन्निशि निर्भयः । सर्वं हस्त-गतं भूयान्नात्र कार्या विचारणा ।
मुक्त-केशो दिशावासः, ताम्बूल-पूरिताननः । कुज-वारे मध्य-रात्रौ, होमं कृत्वा श्मशानके ।
पृथ्वीशाकर्षणं कृत्वा, नात्र कार्या विचारणा । ब्रह्माण्ड-गोले देवेशि ! या काचिज्जगतो-तले ।
समस्ता सिद्धयो देवि ! वाचकस्य करे स्थिता । भस्माभिमन्त्रितं कृत्वा, ग्रह-ग्रस्ते विलेपयेत् ।
भस्म-सलेपनाद् देवि ! सर्व-ग्रह-विनाशनम् । वन्ध्या पुत्र-प्रदं देवि! नात्र कार्या विचारणा ।
गोपनीयं गोपनीयं, गोपनीयं प्रयत्नतः । स्व-योनिरिव गोप्तव्यं, न देयं यस्य कस्यचित् ।

॥ इति श्रीभैरवागमे श्रीशिव-पार्वती-सम्वादे श्रीमहा-काल-ककाराद्यष्टोत्तर-शत-नाम-स्तोत्रम् ॥

विशेष—यह स्तोत्र केवल अभिषिक्त साधकों के द्वारा पठनीय है। अतः अन्य लोग इससे विरत ही रहें, यही उत्तम होगा।

भगवान् श्रीमहा - काल की उपासना - विषयक साहित्य का अभाव है और जो थोड़ा-बहुत उपलब्ध भी है, उसमें भी जो महत्त्व - पूर्ण है, वह बहुत ही अशुद्ध है। यदि इस सम्बन्ध में साधक-गण ध्यान दें और अपने पास के उपलब्ध साहित्य को प्रकाशित करवाएँ, तो अन्य साधकों का भी भला होगा।

(११६)

अथर्व-वेदोक्त वल्गा-सूक्त

यां ते चक्रुरामे पात्रे, यां चक्रुर्मिश्र-धान्यके।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः, पुनः प्रति-हरामि ताम् ॥१
यां ते चक्रुः वृक-वाका, वजे वा यां कुरीरिणि।
अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः, पुनः प्रति-हरामि ताम् ॥२
यां ते चक्रुरेक-शफे, पशूनामुभयादति।
गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः, पुनः प्रति-हरामि ताम् ॥३
यां ते चक्रुरमूलायां, वलगं वा नराच्याम्।
क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः, पुनः प्रति-हरामि ताम् ॥४
यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये, पूर्वाग्नावुत दुश्चितः।
शालायां कृत्यां यां चक्रुः, पुनः प्रतिहरामि ताम् ॥५
यां ते चक्रुः सभायां, यां चक्रुरधिदेवते।
अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः, पुनः प्रति-हरामि ताम् ॥६
यां ते चक्रुः सेनायां, यां चक्रुरिष्वायुधे।
दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः, पुनः प्रति-हरामि ताम् ॥७
यां ते कृत्यां कूपे वदधुः, श्मशाने वा निचख्नुः।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः, पुनः प्रति-हरामि ताम् ॥८
यां ते चक्रुः पुरुषस्यास्थे, अग्नौ संकसुके च याम्।
म्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं, पुनः प्रति-हरामि ताम् ॥९

अपथैनाज-भारैणा, तां पथेतः प्रहिण्मसि ।
अधीरो मर्या धीरेभ्यः, संजभाराचित्या ॥१०
यश्चकार न शशाक, कर्तु शश्रे पादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः ॥११
कृत्यां कृतं वलगिनं, मूलिनं शपथेऽप्ययम् ।
इन्द्रस्तं हन्तुमहता, बधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया ॥१२

तुम्हारे लिए क्रीडा में, पात्र में, मिले हुए अनाज में, जो कृत्या की गई है, कच्चे मांस में जो कृत्या की गई है, उसको मैं दूर करता हूँ । वृक-वाक (बगुले) में, बाज में, बकरे में, जो तुम्हारे लिए कृत्या की गई है, उसको मैं दूर करता हूँ । तुम्हारे लिए एक मछली में, पशुओं में, दोनों में, गदहे में जो कृत्या की गई है, उसको मैं दूर करता हूँ । जो तुम्हारे लिए आकाश-बौर में, खेत में, वगला-सूक्त द्वारा वानराची में, खेत में, जो कृत्या की गई है, उसको मैं दूर करता हूँ । जो तुम्हारे लिए सभा में, प्रतियोगिता में, जुआँ-पाँसे में कृत्या की गई है, उसको मैं दूर करता हूँ । जो तुम्हारे लिए सेना में, बाणों में, शस्त्रों में, रण-भेरियों में कृत्या की गई है, उसको मैं दूर करता हूँ । जो तुम्हारे लिए कुएँ में, बध्य-शाला में, श्मशान में, भवन में कृत्या निक्षिप्त की गई है, उसको मैं दूर करता हूँ । पुरुष की हड्डी में, अग्नि में, शलाका में तुम्हारे लिए जो कृत्या निक्षिप्त है, उस अशीर्ण, अदिग्ध, मांस-भक्षी कृत्या को मैं दूर करता हूँ । अमार्ग में, अभिमन्त्रित जल में, गठरी में स्थापित कर, जो कृत्या तुम्हारे लिए अभिप्रेरित हुई है, उसको ज्ञान द्वारा और अधीरों द्वारा स्थापित को मैं धीरता से दूर करता हूँ । जिसने कृत्या किया है, वह प्रौहणशील इन्द्रिय-चरण और अँगुली में कृत्या करने में समर्थ नहीं हुआ । वह अभागा है, भगवद्-दया से हमारा कल्याण हो । उस बगलामुखी की कृत्या करनेवाले उपासक का हम शपथ देते हैं, इन्द्र उसे महान् बध द्वारा समाप्त करे, अग्नि उसकी कृत्या को जला डाले ।

विधि—उक्त वेदोक्त वलगा-सूक्त कृत्या-निवारण के लिए अपूर्व है । यह ब्रह्मास्त्र, ब्रह्म-विद्या है । भयङ्कर रोग या दर्द में जब अच्छे-से-अच्छे वैद्य की दवा भी लाभ-प्रद न हो, तब इस सूक्त के ग्यारह पाठ करें । हो सके, तो हल्दी से न्यास करें अथवा पीले करवीर के ११ पुष्पों से झाड़ें । ऐसा तीन बार करे । मूल - चोट, भूत - प्रेतादि अङ्ग-रोगों जैसी सभी व्याधियों में यह अनुभूत है ।

(११७)

श्री त्रिशिरा देवी विधानम्

[साधन-माला, जुलाई ९३ के अन्तर्गत श्रीभैरवानन्दनाथ, सागर द्वारा प्रेषित 'श्रीशत्रु-विध्वंसिनी-स्तोत्र' प्रकाशित हुआ है। इस स्तोत्र की एक दूसरी पाण्डुलिपि हमें वयो-वृद्ध साधक पं० कृष्णानन्दजी मिश्र 'वैद्य', प्रयाग की कृपा से प्राप्त हुई है। इस दूसरी 'पाण्डुलिपि' में 'ध्यान' भी है, जो कि पहली पाण्डुलिपि में नहीं था। साधन-माला-प्रेमी बन्धुओं के लिए यह यहाँ प्रस्तुत है—सं०]

विनियोग—ॐ अस्य श्रीशत्रु-विध्वंसिनी-स्तोत्र-मन्त्रस्य ज्वलत्-पावकः ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीशत्रु-विध्वंसिनी देवता, मम शत्रुं शीघ्रं विध्वंसनार्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास— ज्वलत्-पावक-ऋषये नमः शिरसि। अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे। श्रीशत्रु-विध्वंसिनी-देवतायै नमः हृदि। श्रीशत्रु-विध्वंसिनी-देवता-प्रसादात् मम शत्रुं शीघ्रं विध्वंसनार्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

कर-न्यास—ॐ शत्रु-विध्वंसिन्यै अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ रौद्रायै तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ त्रिशिरसे मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ रक्त-लोचनायै अनामिकाभ्यां हुम्। ॐ अग्निर्ज्वालायै कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ रौद्र-मुख्यै करतल-कर-पृष्ठाभ्यां फट्।

हृदयादि-न्यास—ॐ घोर-दंष्ट्रायै हृदयाय नमः। ॐ त्रि-शूलिन्यै शिरसे स्वाहा। ॐ दिगम्बर्यै शिखायै वषट्। ॐ मुक्त-केश्यै कवचाय हुम्। ॐ रक्त-पाण्यै नेत्र-त्रयाय वौषट्। ॐ महोदर्यै अस्त्राय फट्।

'फट्' से ताल-त्रय दें (तीन बार ताली बजावें) और **'ॐ रौद्र-मुख्यै नमः'** से दशों दिशाओं में चुटकी बजाकर **दिग्-बन्धन** करें।

ध्यान : रक्ताङ्गीं शिव-वाहनां त्रि-शिरसां रौद्रीं महा-भैरवीम्,
धूम्राक्षीं भव-नाशिनीं घन-निभां नीलालंकार-कृताम्।
खड्गं शूलं त्रिशूलं वराभय-युतां ध्यात्वा कृताङ्गीं महा,
सर्वाङ्गीं त्रिजटां महानल-निभां, ध्यायेत् पिनाकीं च ताम्।

स्तोत्र : ॐ शत्रु-विध्वंसिनी रौद्री, त्रिशिरा रक्त-लोचना।
अग्निर्ज्वाला रौद्र-मुखी, घोर-दंष्ट्रा त्रि-शूलिनी॥
दिगम्बरी मुक्त-केशी, रक्त-पाणिर्महोदरी।
सर्वदा विप्लवे घोरे, शीघ्रं वश्य-करी द्विषाम्॥

फल-श्रुति : इदं स्तवं जपेन्नित्यं, विजयं शत्रु-नाशनम् ।
सहस्रं - त्रिदिनं कुर्यात्, कार्य - सिद्धिर्न संशयः ।।
गुग्गुलं चन्दनं सर्पिः, होमयेत् सर्पिषाऽथवा ।
विवादे वाद - संग्रामे, विजयं भवति ध्रुवम् ।।

।। हवन-विधि ।।

अग्नि-संस्कारं कृत्वा गुग्गुलं, रक्त-चन्दनं घृताप्लुतं वा केवलं नाम-चतुर्थ्यन्त नमः स्वाहा । इति विधानेन हवनं कुर्यात् प्रति-नाम्ना ।

।। शत्रु-विध्वंसिनी मन्त्र ।।

'ॐ नमो भगवति चामुण्डे रक्त - वाससे अप्रतिहत-रूप-पराक्रमे ! अमुकं वधाय विचेतसे स्वाहा ।'

।। शापोद्धार-मन्त्र ।।

"ॐ श्रीं ह्लीं क्लीं क्रों ऐं लोभाय मोहाय उत्कीलय स्वाहा ।"

।। अग्नि-मन्त्र ।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं शत्रु भस्मं कुरु कुरु ॐ हूँ फट् स्वाहा ।

विशेष—रक्षार्थ पाठ करने के बाद १ माला शापोद्धार, १००० शत्रु-विध्वंसिनी मन्त्र का जप करे । ३ दिन में, १००० बार द्वादश नाम वाले 'स्तोत्र' का पाठ करे । विधि-वत् 'हवन-कुण्ड' बनाकर, अग्नि डालकर अग्नि-मन्त्र का १०८ 'जप' करे । हवन-विधि में उल्लिखित द्रव्यों—पीली सरसों, कटु-तैल, निम्ब-पत्र, गुग्गुल आदि से अग्नि-मन्त्र पढ़ता हुआ १००० आहुतियाँ दे । इससे 'मारण'-प्रयोग कदापि न करे । इससे अपना ही सर्व-नाश होता है । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि दुर्वासना का 'मारण' करना उचित है ।

भूल-सुधार

[**'चण्डी'**, मई ९३ के **'साधन-माला'** में प्रकाशित **'महा - विपरीत प्रत्यङ्गिरा-स्तोत्र'** के २४ वें पद की प्रथम पंक्ति का आरम्भ **'ॐ अं ३'** से है । इसका सही अर्थ इस प्रकार है—**'ॐ अं ॐ अं ॐ अं'**। **'साधन-माला'-प्रेमी बन्धु** अपनी प्रति में सुधार करने की कृपा करेंगे—सं०]

'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र' विज्ञान मासिक पत्रिका की आलोचना :

'कुण्डलिनी-जागरण विशेषांक'

'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, प्रयाग (उ० प्र०)

[गताङ्क के पृष्ठ ११० का शेष]

'कुण्डलिनी-जागरण' के सम्बन्ध में **'विशेषाङ्क'** निकालने का विचार तो अवश्य **'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र-विज्ञान'** के प्रकाशक श्री कैलाशचन्द्र श्रीमाली जी ने उत्तम किया, किन्तु उसके लिए **'विज्ञान-सम्मत'** सामग्री एकत्र करने का प्रयास उनके द्वारा कुछ भी नहीं किया गया। पृष्ठ २६ पर **'कुण्डलिनी तो जगती है हठयोग की इन विधियों से'** लेख के नीचे जो संस्कृत उद्धरण है, वह भी अशुद्ध छपा है और उसका अर्थ भी ठीक नहीं दिया है। शुद्ध रूप एवं सही अर्थ निम्न प्रकार है—

नमः शिवाय गुरवे, नाद-विन्दु-कलात्मने। निरञ्जन-पदं याति, नित्यं यत्र परायणः॥

अर्थात् **'नाद-विन्दु-कला'** आत्मा है जिन गुरुदेव शिव की, उन्हें नमस्कार है। उस **'नाद-विन्दु-कला'** का जो नित्य अभ्यास करता है, वह निरञ्जन-ब्रह्म-पद को प्राप्त करता है।

'नाद-विन्दु-कला' के सम्बन्ध में कुछ न देकर 'हठ-योग' के पाँच बन्धों और छः मुद्राओं का भ्रामक वर्णन किया गया है, जिससे पाठक घबड़ाकर उसी पृष्ठ के सामने छपे, **'कुण्डलिनी'** शीर्षक विज्ञापन के प्रति आकृष्ट हो जाय, जिसमें बड़ी लुभावनी बात लिखी है कि—

'आज के युग में कुण्डलिनी-जागरण आसान कार्य नहीं है। बाजार में सैकड़ों ऐसे पाखण्डी साधु व्यवसायी या प्रचारक पैदा हो गए हैं, जिन्होंने इसे व्यापार समझ लिया है।'

मानों आपने इसे व्यापार नहीं समझा है! किन्तु पृष्ठ ८० पर **'मनगढ़न्त'** दीक्षाओं के नाम एव उनकी **'न्यौछावर'** पढ़ते ही आपका असली रूप प्रकट हो जाता है।... **'गर्भस्थ बालक की कुण्डलिनी जागरण, शक्तिपात से कुण्डलिनी जागरण, फोटो द्वारा कुण्डलिनी जागरण दीक्षा, जीवन मार्ग दीक्षा...'** आदि कपोल-कल्पित दीक्षाओं के नाम और उनके लिए **हजारों रुपयों** की न्यौछावर! **'दीक्षा' जैसे पवित्र 'संस्कार' को इस प्रकार व्यापार की वस्तु बनाना कितना गर्हित कार्य है!**

पृष्ठ ५५ पर मोटे अक्षरों में छपे **'गुरू-देव'** पढ़कर हँसी आ जाती है और कहना पड़ता है कि **'वाह गुरू! आपने तो बड़े-बड़े गुरू-घण्टालों को भी पछाड़ दिया!** क्या बढ़िया 'विज्ञापन' अपना, अपनी धर्म-पत्नी एवं अपने तीनों सुपुत्रों का किया है!!'

भारत की जिस मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र-साधना के विषय में ऋषियों ने घोषित कर रखा है कि—

'गुप्ता तु सिद्धा, प्रकटा तो भ्रष्टा!'

उसे इस प्रकार रङ्ग-बिरङ्गी, चटपटी शैली में खुल्लम-खुल्ला विज्ञापित कर सपरिवार **'श्रीमाली जी'—'अद्वितीय अप्रतिम योगी, निर्झर के उपासक, शास्त्रों के ज्ञाता, कुण्डलिनी-जागरण के सिद्ध-हस्त अध्येता, जीवन की सभी समस्याओं को समाप्त करनेवाले समर्थ देव-पुरुष'** के रूप में अवतीर्ण हुए हैं! हमारी कामना है कि उनका यह **'अवतरण'** कम-से-कम **'भ्रष्ट'** न प्रमाणित हो। देश में ऐसे ही भ्रष्टाचार की कमी नहीं है। महा-माया की दया ही भारत की अध्यात्म-विद्या की रक्षा इस **'भ्रष्टासुर'** से कर सकती हैं।

सभी प्रकार की आपदाओं के निवारण का एक सिद्ध प्रयोग—

श्री बटुक-भैरव-स्तोत्र

(हिन्दी पद्यानुवाद)

रचयिता : ठाकुर अमरसिंह जी, बाँसमण्डी, प्रयागराज (उ० प्र०)

पूर्व-पीठिका

मेरु-पृष्ठ पर सुखासीन, वरदा देवाधिदेव शङ्कर से—
पूछा देवी पार्वती ने, अखिल विश्व-गुरु परमेश्वर से।
जन-जन के कल्याण हेतु, वह सर्व-सिद्धिदा मन्त्र बताएँ—
जिससे सभी आपदाओं से साधक की रक्षा हो, वह सुख पाए।
शिव बोले, आपद्-उद्धारक मन्त्र, स्तोत्र हूँ मैं बतलाता,
देवि! पाठ जप कर जिसका, है मानव सदा शान्ति-सुख पाता।

ध्यान

सात्विक :

बाल-स्वरूप वटुक-भैरव—स्फटिकोज्ज्वल-स्वरूप है जिनका,
घुँघराले केशों से सज्जित—गरिमा-युक्त रूप है जिनका,
दिव्य कलात्मक मणि-मय किङ्किणि नूपुर से वे जो शोभित हैं,
भव्य-स्वरूप त्रिलोचन-धारी जिनसे पूर्ण-सृष्टि सुरभित है।
कर-कमलों में शूल-दण्ड-धारी का ध्यान-यजन करता हूँ,
रात्रि-दिवस उन ईश वटुक-भैरव का मैं वन्दन करता हूँ।

राजस :

नवल उदीयमान-सविता-सम, भैरव का शरीर शोभित है,
रक्त-अङ्ग-रागी, त्रैलोचन हैं जो, जिनका मुख हर्षित है।
नील-वर्ण-ग्रीवा में भूषण, रक्त-माल धारण करते हैं,
शूल, कपाल, अभय, वर-मुद्रा ले साधक का भय हरते हैं।
रक्त-वस्त्र बन्धूक-पुष्प-सा जिनका, जिनसे है जग सुरभित,
ध्यान करूँ उन भैरव का, जिनके केशों पर चन्द्र सुशोभित।

तामस :

तन की कान्ति नील-पर्वत-सी, मुक्ता-माल, चन्द्र धारण कर,
पिङ्गल-वर्ण-नेत्रवाले वे ईश दिगम्बर, रूप भयङ्कर।

डमरु, खड्ग, अभय-मुद्रा, नर-मुण्ड, शूल वे धारण करते,
अंकुश, घण्टा, सर्प हस्त में लेकर साधक का भय हरते ।
दिव्य-मणि-जटित किङ्किणि, नूपुर आदि भूषणों से जो शोभित,
भीषण दन्त-पंक्ति-धारी भैरव हों मुझसे पूजित, अर्चित ।

१०८ नामावली श्रीबटुक-भैरव

भैरव, भूतात्मा, भूतनाथ को है मेरा शत-शत प्रणाम ।
क्षेत्रज्ञ, क्षेत्रदः, क्षेत्र-पाल, क्षत्रियः भूत-भावन जो हैं,
जो हैं विराट, जो मांसाशी, रक्तपः, श्मशान-वासी जो हैं,
स्मरान्तक, पानप, सिद्ध, सिद्धिदः वही खर्पराशी जो हैं,
वह सिद्धि-सेवितः, काल-शमन, कङ्काल, कला-काष्ठा-तनु हैं ।
उन कवि-स्वरूप, पिङ्गल-लोचन, बहु-नेत्रः भैरव को प्रणाम ।
वह देव त्रि-नेत्रः, शूल-पाणि, कङ्काली, खड्ग-पाणि जो हैं,
भूतपः, योगिनी-पति, अभीरु, भैरवी-नाथ भैरव जो हैं,
धनवान, धूम्र-लोचन जो हैं, धनदा, अधन-हारी जो हैं,
जो कपाल-भृत हैं, व्योम-केश, प्रतिभानवान भैरव जो हैं,
उन नाग-केश को, नाग-हार को, है मेरा शत-शत प्रणाम ।
कालः कपाल-माली त्रि-शिखी कमनीय त्रि-लोचन कला-निधि
वे ज्वलन्नेत्र, त्रिनेत्र-तनय, त्रैलोकप, डिम्भ, शान्त जो हैं,
जो शान्त-जन-प्रिय, वटु-वेष, खट्वाङ्ग-धारकः, वटुकः हैं,
जो भूताध्यक्षः, परिचारक, पशु-पतिः, भिक्षुकः, धूर्तः हैं ।
उन शूर, दिगम्बर, हरिणः को है मेरा शत-शत-शत प्रणाम ।
जो पाण्डु-लोचनः, शुद्ध, शान्तिदः, वे जो हैं भैरव प्रशान्त,
शङ्कर-प्रिय-बान्धव, अष्ट-मूर्ति हैं, ज्ञान-चक्षु-धारक जो हैं,
हैं वही तपोमय, हैं निधीश, हैं षडाधार, अष्टाधारः,
जो सर्प-युक्त हैं, शिखी-सखः, भू-पतिः, भूधरात्मज जो हैं ।
भूधराधीश उन भूधर को है मेरा शत-शत-शत प्रणाम ।
नीलाञ्जन-प्रख्य देह-धारी, सर्वापत्तारण, मारण हैं,
जो नाग-यज्ञोपवीत-धारी, स्तम्भी, मोहन, जृम्भण हैं,

वह शुद्धक, मुण्ड-विभूषित हैं, जो हैं कङ्काल धारण करते,
मुण्डी, बलिभुक्, बलिभुङ्-नाथ, वे बालः हैं, वे क्षोभण हैं।
उन बाल-पराक्रम, दुर्गः को है मेरा शत-शत-शत प्रणाम।
जो कान्तः, कामी, कला-निधिः, जो दुष्ट-भूत-निषेवित हैं,
जो कामिनि-वश-कृत, सर्व-सिद्धि-प्रद भैरव, जगद्रक्षाकर हैं,
जो वशी, अनन्तः हैं भैरव, वे माया-मन्त्रौषधि-मय हैं,
जो वैद्य, विष्णु, प्रभु सर्व-गुणी, मेरे आपद्-उद्धारक हैं।
उन सर्व-शक्ति-मय भैरव-चरणों में मेरा शत-शत प्रणाम।

फल-श्रुति

इन अष्टोत्तर-शत नामों को—भैरव के जो पढ़ता है,
शिव बोले—सुख पाता, दुख से दूर सदा वह रहता है।
उत्पातों, दुःस्वप्नों, चोरों का भय पास न आता है,
शत्रु नष्ट होते, प्रेतों—रोगों से रक्षित रहता है।
रहता बन्धन-मुक्त, राज-भय उसको नहीं सताता है,
कुपित ग्रहों से रक्षा होती, पाप नष्ट हो जाता है।
अधिकाधिक पुनरुक्ति पाठ की, जो श्रद्धा-पूर्वक करते हैं,
उनके हित कुछ नहीं असम्भव, वे निधि-सिद्धि प्राप्त करते हैं।

शारदा - भजनावली

शारदा माता मैहरवाली ! दरस देहु

रचयिता : पण्डित कृष्णानन्द मिश्र, ककरा, प्रयाग (उ० प्र०)

'शा'रद आजु प्रसन्न भईं, अब दुःख मिटो सिगरे जग को।
वरदान के हाथ उठै अब ही, तब दारिद भागि रसातल गो॥
सुख - सम्पति की सरिता बहिहैं, सब काज हुए उनके जन को।
सब भक्त सुखी हिय में हुलसैं, जगदम्ब प्रसन्न भईं मन को॥१

'र'वि-चन्द्र हटैं सिगरे ग्रह साथ, अरु भानु उगै दिशि पश्चिम को।
वारिधि सूखि धरा-सा लगै, अरु पावक रूप धरै जल को।।
जल पावक-रूप धरै तुरतै, तुरतै थल रूप धरै सरिता को।
बात भई सो भई अब हीं, जब शारद ! बाँह गही मन को ।।२
'दा'रिद-दुःख-विदारन कारन, शारद रूप धरो अब हीं।
चढ़ि हंस के ऊपर वीणा बजावत, गावत मौन भए अबहीं।।
मन मन्द हँसी मुसुकान-सी सूरति, ब्रह्म-विचार में लीन रहीं।
सुख-सम्पति की सरिता बहिहैं, सब दुःख गयो अब हीं तब हीं ।।३
'मा'न गयो अपमान के कारन, दुःख गयो जगदम्ब भजे से।
सुक्ख गयो जगदम्ब के भूलत, रोग गयो पय-पान किए से।।
नाम गयो कु-विचार के कारन, तेज गयो मन पाप किए से।
शौर्य गयो बल-शील गयो, धन-धाम गयो जगदम्ब छुटे से ।।४
'ता'प गयो—परिताप गयो, सब पाप गयो—जगदम्ब हैं राजी।
मन चाहत बात सभी भई, कछु खामी नहीं सब पूरन माँ जी।।
पूरन-पूरन पूर्ण भए अब, बाकी नहीं सब पूरन माँ जी।
एकहि चाह रही मन में, अब दरसन देहु तू मैहर माँ जी ।।५
'मै'हर-धाम में छाय रहीं, ब्रह्म-लोक से आय गईं जगदम्बा।
ब्रह्म-विचार में लीन रहीं, अरु पाप भगाय दई जगदम्बा।।
पुण्य-विकास पसार दई, अरु शान्ति बिछाय दई जगदम्बा।
दुष्ट के रूप नसाय दई, अरु भक्त निहाल करी जगदम्बा ।।६
'ह'हरैं दुखिया सिगरे जग में, तुम ही अवलम्ब भईं जगदम्बा।
चारिहु ओर निहारि रहैं, नहिं कोऊ लखाय परै जगदम्बा।।
बाँह उठाय पुकारि रहैं सबहि, होय अनाथ रहे जगदम्बा।
दुखियन की विनती सुनतै, द्रव-रूप उठाय लई जगदम्बा ।।७
'र'मते-भ्रमते दिन बीति गए, अब आय बुढ़ाई गई जगदम्बा।
सब देवन से बहियां बिछुरीं, नहिं कोऊ सहाय रहे जगदम्बा।।
पाप अपार हैं—भार अपार है, कोऊ नाव खेवाय नहीं जगदम्बा।
केवट की चोलिया पहिनी तब, नाव लगाय दई जगदम्बा ।।८

'बा'बा भए वरदानिक मातु के, तीनहु लोक में जाय पुजाहीं।
छाईं पताका चहूँ दिशि में, नहिं कोऊ जोड़ मिला जग माहीं ।।
आँख उठाय के फेरि दई सब, दारिद-दुःख बिलाय के जाहीं।
होहु प्रसन्न सदा हम पै, तब जानि परै तिहुँ लोक के माहीं ।।९
'लीं'न भए द्विज-श्रेष्ठ शिरोमणि, गौर शरीर भरे द्युति माहीं।
काँधे जनेऊ विराजि रहे, अरु पायन में पनहीं रहि नाहीं ।।
पायन पादुका शोभि रहे, अरु हाथ कमण्डलु पुस्तक माहीं।
देहु असीस सदा द्विज - राज, जेहि वेद विचारत बांचत माहीं ।।१०
'द'र्प गए सब पापिन के, अरु मान गए जे रहे हैं हङ्कारी।
दुष्ट गए सब नरक के घाट, समाय गए सब खप्पर माहीं ।।
कुतूहल खेलि रहीं जननी, हांक हङ्कार रहै हहकारी।
श्यामल सूरति रूप भयावनि, कालिका मातु करै किलकारी ।।११
'र'खिहैं बतिया हमरी तुरतै, अब भैरवनाथ गए हरषाई।
पाप हटाय के मुग्ध रहैं, अरु तेज पसार दिए हैं कराई ।।
दुःख - दरिद्र नसावन को अब, अद्भुत रूप दिए हैं देखाई।
वेगि प्रसन्न करौ जननी तुम हीं, अब भैरव होहु सहाई ।।१२
'स'तियन के बीच मातु बहुरि जी विराजि रहीं,
बाबा अड़बङ्गी की बढ़ाई है पताका ।।
दासन के दुख और दारिद विदारि दई, पतिव्रत-धर्म की जमाय दई साका ।।१३
'दे'खि विहाल भई जननी सुत, तोर उबार करौं छिन माहीं।
दारिद ठेलि रसातल को अब, आवहु अङ्क में लेहुँ लगाहीं ।।
चूमहुँ-चाटहुँ प्रेम करौं, अरु आँसू को पोछहुँ आँचल माहीं।
निर्भय दान दऊँ अबहीं, तुम नाम जपो होय निश्चल माहीं ।।१४
'हु'लसी छतिया जगदम्ब के कारन, रूप देखाय दई जगदम्बा।
वेद पढ़ाय के पूर्ण करी, अरु शास्त्र पढ़ाय दई जगदम्बा ।।
प्रेम को पाठ पढ़ाय दई, अरु योग बताय दई जगदम्बा।
चारहु ओर से पुष्टि करी, अरु तुष्ट कराय दई जगदम्बा ।।१५

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी

के

पावन अवसर पर

माता पीताम्बरा

का

आवाहन और आगमन

• श्री बलराम दुबे,
७ नवलकिशोर मार्ग, लखनऊ (उ० प्र०)

* * *

॥ गुरु-प्रार्थना ॥

हे सन्त, हे सिद्ध, हे साधकेश्वर !
सुख-मय सुरक्षा दो, आश्रय दो गुरु-वर ! ॥

सोया है चरणों में परिवार मेरा,
शाश्वत सुरक्षा दो, आश्रय निरापद ।
अमृत तपस्या का, फल शान्ति-वन का,
आनन्द - घन की सुधा साधना - गत ॥
सुख-मय सुरक्षा दो, आश्रय दो गुरु-वर ! ॥
मन के प्रवेगों को रोको महा - सन्त,
पीऊँ परम-तत्त्व निर्झर सुधा - जल ।
तूफान थमकर बहे शान्त वन में,
सुधा - धार रस में प्रवाहित कमण्डल ॥
सुख-मय सुरक्षा दो, आश्रय दो गुरु-वर ! ॥

आस्था दो, आधार मन को मनोता,
बुद्धि विमल, चित्त निर्मल हो निश्छल ।
रोको महा - आधि - व्याधि भयङ्कर,
परम तुष्टि दो, शान्ति दो ज्ञान उज्ज्वल ॥
सुख-मय सुरक्षा दो, आश्रय दो गुरु-वर ! ॥
हे सन्त, हे सिद्ध, हे साधकेश्वर,
सुफल साधना, सिद्ध-विद्या हो गुरु-वर ! ॥
महा - सिद्ध बगलामुखी - शक्ति पाऊँ,
हरो विघ्न-हर ! विघ्न - बाधा गणेश्वर ॥
सुख-मय सुरक्षा दो, आश्रय दो गुरु-वर ! ॥

॥ माता पीताम्बरा का आवाहन ॥

आज श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी के अवसर पर—
माता पीताम्बरे ! आपका आवाहन है !
बन जाए कंस का भेजा तूफान आज,
कृष्ण नव-जात का रक्षा-कवच त्राण-ढाल ।
शान्त हो जाएँ उफनती हुई यमुना,
पाँवों के मात्र स्पर्श से ही शेष-नाग—
कि हृदय की वृन्दा में फलें-फूलें कृष्ण-ग्वाल,
बनें क्रूर-धर्मी भी त्याग सहज जड़ता को,
दानी, उदार, प्रिय, करुणा-निधान प्यार ॥
माता पीताम्बरे ! कृष्ण-शक्ति बगलामुखी !

श्रीविष्णु बीज-जननी विघ्न-शिखर-वादिनी ।।
कंस की जिह्वा को पकड़ा था तूने —
कि मार्ग श्रीयोगेश्वर का सुगम निष्कण्टक हो ।
गदा की रक्षा थी वीर बलभद्र को,
मुझे भी रक्षो माँ कि दूर कष्ट-सङ्कट हो ।
साधकों की जीभ तू, लगाम तू सरस्वती,
छन्द बनें वन्दना के निकले हुए बोल मेरे ।
साधना सुरक्षित हो, सुफल सानुकूल हो ।
ज्ञान-हीन बालक की बनो मार्ग-दर्शिका ।।
हाथ में प्रकाश-स्तम्भ लेकर मशाल तू,
सङ्ग चलो सागर के उठते तूफान में ।
नौका-पतवार बनो, चमको अदृश्या ।।
रहकर भी दूर तू, विन्ध्य की पहाड़ियों में,
हृदय की वृन्दा में वास करो, वास करो ।
आत्म-रस-सरोवर में, देखूँ तुझे हर तरफ ।
श्रीबगलामुखी ! साथ रहो, सर्वदा सहाय रहो ।
क्षमा करो, क्षेम, क्षान्त, शान्ति मातृ-रूपिणी ।
सर्वदा सहाय रहो, समर्थ सिद्ध बगलामुखी ।।

।। माता पीताम्बरा का आगमन ।।

नयन की हूँ नींद स्वप्निल, लोक की आलोक-धारा
शांति-वन की मुग्ध नीरव, झील का कुसुमित किनारा
आ रहा है कौन मारुत, क्षोभ-वन आतङ्क लेकर ?
आ गई भगवान, सुन आवाज तेरे पास चलकर ।
सहन की हूँ डोर, वह सोपान रख दो पाँव मुझ पर ।।
प्रणव की अनुगूँज अनहद नाद, गूँजित प्राण जिनसे,
पीत-केशर-पुष्प सरसिज, गन्ध-मादन मलय-वन से ।
अंकुरित हर बीज को मैं, पोषती मधु-धार बनकर ।
कौन आकर सृष्टि को, ललकारता आवाज देकर ?
आ रहा है कौन मारुत, क्षोभ-वन आतङ्क लेकर ?
सहन की हूँ डोर, वह सोपान रख दो पाँव मुझ पर ।।
जगत्-रक्षा-भार मुझ पर, है टिका संसार सारा ।
थप-थपाकर कौन ताण्डव, राग लाए प्रबल धारा ?
थरथराती सृष्टि की हर रोम से, आवाज सुनकर ।
आ सको भगवान् ! आओ, प्रलय की झङ्कार सुनकर ।
सहन की हूँ डोर, वह सोपान रख दो पाँव मुझ पर ।।
सर हरिद्रा प्रकट हरि की, शक्ति सार्थक फलित तप मैं
सुप्त जाग्रत स्वप्न हर पल, सामने संग्राम-रत मैं ।
मत डरो बलराम ! रक्षक हैं, सदा बगलामुखी तव ।
आ गई 'भगवान्' सुनकर आह तेरे पास चलकर ।
सहन की हूँ डोर, वह सोपान रख दो पाँव मुझ पर ।।
वृहद् रसना-क्षोभ मारुत की, पकड़कर हूँ खड़ी मैं ।
मार मुग्दर मान - मर्दन, दैत्य - दुश्मन कर रही मैं,
जगत्-पालक जाग पोषो, त्रस्त सन्तति निडर बनकर ।
आ गई 'भगवान्' सुनकर आह तेरे पास चलकर ।
सहन की हूँ डोर, वह सोपान रख दो पाँव मुझ पर ।।
उदर वात - क्षोभ देह - कष्ट आधि - व्याधि हर ।
त्रस्त - गात शुष्क - प्राय, प्राण आत्म - शक्ति भर ।
हम अबोध, पाल - पोष, अङ्ग हृष्ट - पुष्ट कर ।
प्रार्थना करूँ, समर्थ विष्णु-शक्ति रक्ष-रक्ष ।
सींचती धरा सुधा अनन्त धार में उतर ।
श्रीकृष्ण-शक्ति ! आ उतर, श्रीविष्णु-शक्ति आ उतर ।।
स्वच्छ हो अपान प्राण वायु पञ्च-सिद्ध-तत्त्व,
आधि-व्याधि विघ्न कष्ट-कण्टकों को दूर कर ।
हृष्ट-पुष्ट सबल पञ्च पाण्डवों को स्वस्थ कर,
ऋद्धि-सिद्धि उरसिजों की तृप्ति अम्ब ! कण्ठ भर ।
सींचती धरा सुधा अनन्त धार में उतर,
श्रीकृष्ण-शक्ति ! आ उतर, श्रीविष्णु-शक्ति आ उतर ।।
अपार शक्ति कौरवी अलंघ्य व्यूह नष्ट कर,
क्षीण-शक्ति दीन-हीन पाण्डवों के कष्ट हर ।
ध्वस्त रथ सवार पार्थ, त्यक्त अस्त्र-शस्त्र-शर,
शत्रु-शक्ति कील कर श्रीकृष्ण-शक्ति ! आ उतर ।
सींचती धरा सुधा अनन्त धार में उतर ।।

त्रिपुर-सुन्दरी पुनीत पीत-वस्त्र-धारिणी,
सुधा-सिन्धु-वासिनी सुवर्ण-रत्न-पीठ पर ।
हेम-मुकुट छत्र रत्न-राजिता प्रत्यङ्गिरा,
पीत-पद्म-पुष्प-कान्ति विष्णु-प्राण-प्रीति कर ।
गदा लिए विशाल कर, श्रीकृष्ण-शक्ति आ उतर ।
सींचती धरा सुधा अनन्त धार में उतर ! ।।
वाम हस्त दनुज-जीभ खींचती हुई प्रलम्ब,
रोकती हुई प्रवेग गदा लिए विशाल कर ।
कर रहीं समूल नष्ट वात-क्षोभ विघ्न-कष्ट,
दानवी उद्दण्डता करें विनष्ट मार कर ।
बगुल-ध्वजा लहर-लहर, श्रीकृष्ण-शक्ति आ उतर !
प्रार्थना करूँ, दया - सुधा - कलश छलक - छलक ।
श्रीविष्णु-शक्ति रक्ष-रक्ष, श्रीकृष्ण-शक्ति रक्ष-रक्ष

जिज्ञासु के पत्र

प्रश्न-कर्त्ता : श्री कृष्णमोहन श्रीवास्तव, औरङ्गाबाद (बिहार)

'शाबर-मन्त्र-संग्रह', भाग १ के पृष्ठ ६४ पर निम्नाङ्कित मन्त्र छपा है—

"ॐ नमो। कोटि वज्र पर शिला, तापर बैठे शोषा वीर। ताके साथ नव-नाथ बैठें। चौरासो सिद्ध बैठे। ठः ठः ठः। ह्रीं ह्रीं। आगच्छ मत्-समीपे त्वरमानय। त्रैलोक्य-पर्यन्तान् भूत-नामकान् शीघ्र-मानय। हुं फट् ॐ पः पः।"

प्रश्न (१) पुस्तक में ऊन की गुँथी माला से 'जप' करने का विधान छपा है। 'जप' के आदि और अन्त में **'तीर्थ'** की बलि अर्पित करे—ऐसा लिखा है। कृपा करके बताएँ कि **'तीर्थ'** की **'बलि'** क्या है और यह कैसे अर्पित की जाएगी? **'माला'** किस चीज की होगी?

प्रश्न (२) कहीं-कहीं किसी मन्त्र में 'जप' के बाद **'चिता'** में हवन करें—ऐसा पढ़ने को मिला है। कृपया **'चिता'** को स्पष्ट करें।

समाधान (१) 'तीर्थ' तन्त्र का साङ्केतिक शब्द है, जिससे तात्पर्य है, **'मद्य'** (सुरा) का। **'बलि'** शब्द भी साङ्केतिक है। **'बलि अर्पित करना'** अर्थात् खाद्य या पेय - रूप मे कोई वस्तु देवता के समक्ष रखना। उदाहरण के लिए देवी को **'नारियल की बलि'** अर्पित की जाती है, जिसे आप जानते ही होंगे। उसी प्रकार **'तीर्थ'** या **'मद्य'** भी **'बलि-रूप'** में अर्थात् **'नैवेद्य-रूप'** में अर्पित किया जाता है।

'माला' ऊन से गुँथी होनी चाहिए। सामान्यतः रुद्राक्ष की ही माला का प्रयोग होता है। अतः उसी को ग्रहण करना उचित होगा।

समाधान (२) 'चिता' शब्द तो लोक-प्रसिद्ध है। श्मशान में **'चिता'** प्रज्वलित होती है। उसी में शव-दाह होता है। उसी **'चिताग्नि में हवन करना'** तन्त्र की विशेष क्रिया है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि केवल पुस्तक के आधार पर **'कोई साधना'** करनी उचित नहीं है। किन्हीं अनुभवी **'गुरु-देव'** की देख-रेख में ही साधना करनी चाहिए। आपकी जिज्ञासाओं से प्रतीत होता है कि आपने कदाचित् अभी तक **'तन्त्रोक्त दीक्षा'** प्राप्त नहीं की है। आपको यह सलाह देना आवश्यक है कि पहले आप किन्हीं सद्-गुरु से विधि - वत् **'दीक्षा'** ले लें, **तब मन्त्र - साधना करें**। केवल जानकारी प्राप्त करना हो, तो कोई बात नहीं। आशा है उक्त स्पष्टीकरणों से आपका समाधान हो जायगा।

—सम्पादक।

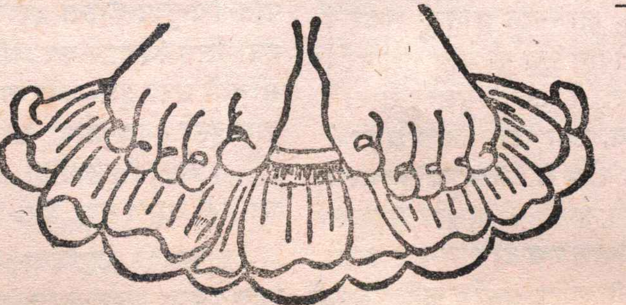

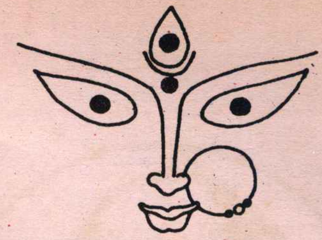

'श्री दुर्गा सप्तशती' सम्बन्धी उपयोगी पुस्तकें

१ — सप्तशती- तत्व — १० - ००

'**श्री दुर्गा सप्तशती**' के ऐतिहासिक आख्यान की दार्शनिक व्याख्या

२ — सप्तशती - सूक्त- रहस्य — (प्रेस में)

सप्तशती की पाँच स्तुतियों — **१ रात्रि - सूक्त, २ शक्रादि - स्तुति, ३ श्रीनारायणी स्तुति, ४ देवी- उक्ति, ५ श्री देवी - सूक्त की ज्ञान - दायिनी विस्तृत व्याख्या।**

३ — मन्त्रात्मक सप्तशती (स-जिल्द) — १०० - ००

'**श्री दुर्गा सप्तशती**' के ७०० मन्त्रों में से प्रत्येक मन्त्र के अनुष्ठान की अभूतपूर्व अनुभूत विधि।

४ — सार्थ चण्डी (श्रीदुर्गा सप्तशती) — ७५ - ००

'**गुप्तवती**', '**शान्तनवी**' आदि प्रसिद्ध संस्कृत टीकाओं के आधार पर हिन्दी में पहली बार '**श्रीदुर्गा सप्तशती**' के प्रत्येक श्लोक की विस्तृत व्याख्या।

५ — सप्तशती - रहस्य — ५ - ००

'**श्रीदुर्गा सप्तशती**' का पाठ - क्रम, पुरश्चरण, मन्त्र - प्रयोग एवं प्रश्न - विचार

६ — श्री दुर्गायण (हिन्दी छन्दानुवाद) — १० - ००

अर्गला, कवच, कीलक, रात्रि - सूक्त, तेरह अध्यायों, देवी- सूक्त का अनूठा छन्दानुवाद।

७ — बीज- त्रयात्मक दुर्गा - सप्तशती — ४ - ००

'रहस्य- तन्त्र' में निहित 'सप्तशती' अनुष्ठान की **बीज** - त्रयात्मक विधि

८ — रुद्र- चण्डी — ७ - ००

'रुद्र- यामल तन्त्र' में निहित 'सप्तशती' - अनुष्ठान की विधि

९ — सप्तशती के विविध प्रकार — १५ - ००

'सप्त - श्लोकी दुर्गा', 'त्रयोदश- श्लोकी दुर्गा', 'गुप्त सप्तशती', 'मूल सप्तशती', 'श्रीगर्भ - चण्डी', 'बटुक- भैरव - स्तोत्र घटित चण्डी - विधान' एवं 'सप्तशती - सार- स्तोत्र' सहित।

१० — लघु चण्डी (हिन्दी अनुवाद सहित) — ४ - ००

महर्षि वेद - व्यास रचित **श्रीमद् - देवी भागवत में** निहित सप्तशती का मूल - पाठ।

रजि॰ संख्या 32981/57

श्रावण, २०५० वि० - अगस्त, १९९३

रजि॰ संख्या AD-96

राष्ट्र - ध्वज की छाया में साथ रहने और साथ मरने का ध्येय रखना चाहिए ।

उपनिषदों में कहा गया है--

मैं और मेरा संघ, दोनों साथ रहें । मेरा और मेरे संघ का तेज वर्धित हो और मेरे तथा संघ के बीच द्वेष पैदा न हो । हम साथ - ही - साथ उन्नत हों ।

– गुप्तावतार बाबाश्री

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक : ऋतशील शर्मा

चण्डी - कार्यालय, परावाणी प्रेस, प्रयाग २११००६